भूमिका।

—*—

योगमार्ग संसार में अत्यन्त दुस्तर मार्ग है। उपनिषद् बतलाती है कि "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति" योग मार्ग वस्तुतः जीवनपथ पर चलने वाले के सामने ऐसी भयानक तेज तलवार की धार के समान है जिसके पार जाना भी कठिन है। क्रान्त दर्शी—इस संसार के ऊंचे नीचे मार्गों और भूमियों में गहरी तात्विक दृष्टि से देखने वाले—कवि उस मार्ग को बड़ा दुर्गम मार्ग बतलाते हैं। यह संसार का ऐसा पर्वत या दरों का टेढ़ा मेढ़ा मार्ग नहीं है जिस पर शरीर के साधनों से जाया जा सके प्रत्युत यह बड़ा ही सीधा योग का राजमार्ग है जिस पर चलने के लिये आध्यात्मिक प्रबल उपकरणों की आवश्यकता है। यद्यपि चलने के लिये बड़े तप और कष्ट और यातनायें सहनी पड़ती हैं, तो भी जितना कष्ट है उतनाही आनन्द भी उस मार्ग में है। सांसारिक सभी व्यावहारिक मार्गों से उस मार्ग की बड़ी विलक्षणता है। सांसारिक सभी मार्गों में जो जितना श्रम उठावेगा उसको उतना ही लाभ भी होगा। जैसे यदि कोई राजा अपने बलवीर्य से युद्ध के घोर संग्राम में प्रवृत्त होगा तो जीतने पर उसको राजपद मिल जायगा। संसार के सब भोग उसके पास हो जायेंगे। जो व्यक्ति रात दिन के परिश्रम से सब कष्ट झेल कर समुद्र और स्थल के

सब भय और आशंकाओं को पार कर के व्यापार करेगा उसको अनेक प्रकार के धन और सुख सामग्री मिलेगी। परन्तु नश्वर संसार में ये सब ऐश्वर्य विभूतियाँ भी नश्वर होंगी। जहाँ उन नश्वर विभूतियों के प्राप्त होने के साधन हैं सो साथ ही साथ उनके नष्ट होने के उपाय भी जुडे रहते हैं। धन लाभ के साथ चोरों की कुदृष्टि रहती है। राज्य लाभ के साथ द्रोहियों और अन्य राज्यलोभियों का लोभ भी साथही लगा रहता है। फलतः, व्यावहारिक सांसारिक विभूतियों में भय है। अतः आत्मवेदी ब्रह्मज्ञानी योगियोंने संसार की नश्वर विभूतियों को विभूतियाँ न कह कर भूतिमात्र कहा है। और उनको नश्वर और भयाकीर्ण देखकर ब्रह्मज्ञान के योग मार्ग को अभय और अमृत कहा है। वे उसी मार्ग पर निरन्तर लौ लगाये रहते हैं।

जैसे संसार के साधारण मार्गो पर भी कहीं सुन्दर तालाब और कहीं सुन्दर धर्मशाला, कहीं रमणीय नगर, कहीं हरियाला खेत, कहीं मनोहर पर्वत और कहीं सुन्दर उद्यान के विहार का आनन्द यात्री को मिलता है जिससे उसके हृदय को विशेष आल्हाद और सुख अनुभव होते हैं, जिन तक पहुँच कर वह अपने पकड़े रास्ते को सफल समझता है, अपनी यात्रा को धन्य कहता है और अपने श्रम से थक कर भी अगली यात्रा के लिये उत्साहित होता है, उसी प्रकार योगमार्ग के मुमुक्षु यात्री को भी अपने योग मार्ग पर भ्रमण करते हुए अद्भुत विचित्र दृश्य दिखाई पड़ते हैं। वही उसकी सिद्धियाँ हैं, वही उसकी विभूतियाँ हैं, वही उसके क्रमिक पड़ाव

हैं। उन भूमियों पर पहुँच कर वह बड़ा प्रफुल्लित हो जाता है। उसको अपना श्रम सफल सा प्रतीत होने लगता है।

जिस प्रकार मार्ग में आने वाले किसी सुन्दर उद्यान, पर्वत, तालाब आदि के दृश्य में फंस कर यात्री वहीं मुग्ध हो जाय और अगले मार्ग की सुध भूल जाय तो उसका अपने मंजिल ए-मकसूद पर पहुंचना कठिन हो जाता है उसी प्रकार योग मार्ग का यात्री भी यदि किसी प्राप्त सिद्धि या विभूति की लौ लपट में लिपट जाय तो उसका भी मुक्ति या परम ब्रह्मानन्द के वास्तविक उद्देश्य तक पहुँचना दुर्लभ हो जाता है।

इसीसे योगशास्त्रज्ञ इन सिद्धियों और विभूतियों को भी बाधक ही समझते हैं। तो भी उनका ज्ञान मार्ग के यात्री के लिये उतना ही आवश्यक है, जैसे साधारण पथिक के लिये अपने मार्ग का 'गाइड् बुक'।

संयम से इस मार्गपर जाना होता है। संयम वस्तुतः एक ऐसा साइकल है जिसपर मनुष्य अकेला, एकान्त रहकर, अपने ही बल से और पर्याप्त अभ्यास से चढ़ सकता है। अभ्यास हो जाने पर फिर बड़े वेग से अपने अभिलषित मार्ग पर चल सकता है। उसमें ध्यान और समाधि के दो चक्र लगे हैं जिनको फिराने के लिये चित्त की धारणा की संकली लगी है। वह ढीली पड़ी नहीं कि दोनों चक्र ढीले पड़ जाते हैं और संयम का साईकल टूट जाता है। ध्यान का चक्र कहीं का कहीं चला जाता है और समाधि भंग होकर कहीं नष्ट हो जाती है। इस लिये यात्री को बड़ी सावधानी से धारणा की डोरी कसे रहना चाहिए। बस संयम का साइकल वश में ही रहता है। उसपर

आरूढ़ होकर यात्री बड़े दिव्य स्थानों पर अनायास पहुँच जाता है। भृकुटि, हृदय, नाभि आदि पर चित्त जमाना, धारणा, कहाती है। उसीसे एकतान हो जाना 'ध्यान' कहाता है और ध्येय विषय में ध्याता का एक रूप हो जाना ही 'समाधि' है। तीनों का एकत्र हो जाना ही 'संयम' है। इसी पर वश करने से सबसे प्रथम प्रज्ञालोक पर विजय हो जाती है। अर्थात् पांचों इन्द्रियों के ज्ञान-क्षेत्रों की सीमाएं टूट जाती हैं। दूर श्रवण, दूर दर्शन, दूर घ्राण, दूर स्पर्श और दूर रसन आदि सभी दिव्य ज्ञान होने लगते हैं। यही सिद्धियां "संवित् सिद्धि" कहाती हैं जिसका मौलिक वर्णन आप पुस्तक में भली प्रकार पढ़ पावेंगे। धर्म परिणाम, अवस्था परिणाम और लक्षण परिणाम इनपर संयम द्वारा गति करने से अतीत गुजरे हुए और अनागत अर्थात् भविष्यत् का ज्ञान भी हो जाता है।

सम्पूर्ण शब्दों और उनके अर्थ ज्ञानों पर संयम करने से सम्पूर्ण प्राणियों की बोलियों का ज्ञान हो जाता है। संस्कारों पर संयम करने से पूर्व जन्म का सब ज्ञान भासने लगता है। मानस प्रतीतियों पर संयम करने से दूसरे के चित्त का भी ज्ञान हो जाता है। शरीर के दिव्य रूप पर संयम करने से मनुष्य अन्तर्धान हो जाता है। वह जहां चाहे अदृश्य हो सकता है।

मन की सूक्ष्म प्रवृत्ति को ही "ज्योतिष्मती गति" कहा गया है। वहां मानस दीपक स्वयं संयम के संघर्ष से जल उठता है, चमक उठता है। उससे दूरस्थ या व्यवहित वस्तुओं का भी ज्ञान भासने लगता है। यही "विशोकागति" कहाती है। फिर

आत्मा का अज्ञान-मोह-शोक आदि सभी कष्ट आप से आप टूट जाते हैं और आत्मा की विशुद्ध शुचि-कान्ति चमचमाने लगती है।

कण्ठ कूप में संयम करने से भूख और प्यास पर विजय हो जाती है।

मूर्धास्थान 'सहस्र दल कमल' में संयम करने से सिद्धों का दर्शन होता है।

फलतः संयम से प्रातिभ ज्ञान उत्पन्न होता है। उसीको योगशास्त्र में 'विवेकज ज्ञान' कहा है। उसके उत्पन्न हो जाने पर योगी सर्वज्ञ हो जाता है। उसीसे उसको प्रातिभ श्रवण, प्रातिभ वेदना, प्रातिभ स्पर्श, प्रातिभ स्वाद और सभी प्रातिभ ज्ञान उत्पन हो जाते हैं। वेही सब दिव्य ज्ञान कहाते हैं।

आत्मा और उसके बांधने वाले शरीर के बन्धनों के कारण स्वतः शिथिल हो जाते हैं और आत्मा की ज्ञानमार्ग से प्रबल गति होती हुई प्रतीत होने लगती है। इससे योगी दूसरे के शरीर में प्रवेश करने के समर्थ हो जाता है।

संयम से ही उदान आदि हृदयस्थ सभी प्रेरक वायुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त हो जाता है। उदान जय से पानी पर चलना, कीचड़ पर समाधिस्थ होकर बैठना, कांटों शूलियों पर भी कष्ट न पाना, और वायु में उड़ना तक योगी के लिये सहज हो जाता है।

समान वायु के वश करने से अग्नि तेजःपुञ्ज के समान देदीप्त होने लगता है। उसीको वर्तमान के विद्वान् Personal Magnetic Aora या अध्यात्म वैद्युतिक आवरण कहते हैं। यही

दीप्त होकर योगियों के शरीर पर तेजोवलय के समान चमका करता है। आदित्य योगी का यही तेजोवलय इतना प्रखर हो जाता है कि मध्यान्ह में सूर्य का प्रकाश भी उसके सामने फीका जँचता है। इसीको पतंजलि महाराज "ज्वलन" कहते हैं।

काय और आकाश के सम्बन्ध पर संयम करने से योगी का शरीर रूई के समान हलका हो जाता है, वह आकाश में स्वच्छन्द विहार कर सकता है।

सिद्धयोगी जब चाहे संयम के बल पर ही शरीर को छोड़ कर भी अन्यत्र गमन कर सकता है। शरीर में बैठा २ संकल्परथ पर गमन करे तो यह गति 'कल्पितागति' कहाती है। यदि शरीर को छोड़ कर बाहर गमन करे तो उस गति को 'महाविदेहा' गति कही जाती है। यह अवस्था प्राप्त होने पर मानस ज्ञानप्रकाश पर पड़ा हुआ अज्ञानका सब पर्दा फट जाता है। तभी योगी को ब्रह्मसाक्षात्कार हो जाता है। उसको सब पंच भूतों पर पूर्ण वश हो जाता है। अणिमा लघिमादि सिद्धियाँ उसके वश हो जाती हैं। वह क्षण में अणु के समान अदृश्य छोटासा हो सकता है, रूई के रेशे के समान हलका हो सकता है, विशाल विराट रूप धर कर योगी योगेश्वर कृष्ण के समान सम्पूर्ण संसार भर में फैल सकता है। सब इच्छाएँ इसको प्राप्त हो जाती हैं।

काय और उसका मोटाई, लम्बाई, चौड़ाई, भार आदि कोई भी धर्म उसकी गति में बाधक नहीं रहता उसके शरीर का रूप दिव्य और कठोरता वज्र से भी अधिक हो जाती है।

उन सब सिद्धियों, विभूतियों को भी पा कर उन सब भूतिमय भूमियों में गुजरता हुआ मुमुक्षु, योग मार्ग का यात्री सच मुच सब इन प्रलोभनों पर लात मार कर अपने सब मल-दोषों को ज्ञानाग्निमें भस्म कर देता है और केवल ब्रह्म में लीन हो जाता है। वही, "कैवल्य" कहाता है। वहाँ पहुँच कर फिर आत्मा इस संसार में लौट कर नहीं आती। वहीं 'कृष्ण धाम' है जिसको गीता ने कहा है।

" यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।"

प्रिय पाठक !

यही सब योगमार्ग की विभूति हैं। इस मार्ग में प्रविष्ट होकर विचरने से ही ऐश्वर्यमय ईश्वरीय माया का विलास-पना चलता है और ईश्वर पर श्रद्धा का और भी अधिक उत्कर्ष हो जाता है। इसमें मनोयोग देने से अवश्य फल मिलता है जैसे श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है कि—

"नेहाऽभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥"

इस लोक में योग मार्ग पर श्रम से चलने वाले का श्रम कभी नष्ट नहीं होता। वह अपने मार्ग से कभी लौटकर नीच पथपर नहीं जाता, क्योंकि योग मार्ग का थोड़ा सा किया पुण्य भी बड़े भारी भयों से रक्षा करता है।

पाठकगण, यह योग की अनन्त विभूतियों का मार्ग है, जिसकी महिमा हम अनन्तकाल से सुनते चले आ रहे हैं।

उनमें से कुछ का वर्णन इस छोटी सी पुस्तक में डा० प्रसिद्धनारायण सिंह जी ने सीधी सरल भाषा में सर्व साधारण के सामने रखने का प्रयत्न किया है जिसे आप पढ़ कर यथाशक्ति लाभ उठावें ।

श्री काशी
मि० चैत्र सुदी ७ मी
१६७६

जयदेवशर्मा
विद्यालङ्कार ।

योग की कुछ विभूतियाँ

पहला पाठ

विचार में शक्ति

यदि ये पाठ आज से बीस बरस पहले लिखे गये होते तो भारतवर्ष की सभ्य जनता की समझ को इस बात की महिमा की ओर झुकना बहुत ही कठिन होता कि विचार में भी शक्ति है, उसके क्या २ नियम हैं और उस शक्ति के क्या २ परिणाम हो सकते हैं। बीस वर्ष हुए कि भारतवर्ष की नई सभ्यता के बहुत ही कम लोग इस विषय की जानकारी रखते थे। इस विषय के गुरु-जनों के उपदेश थोड़े से योगियों को छोड़ कर अन्य लोगों द्वारा व्यर्थ के प्रलाप समझे जाते थे। परन्तु बीस वर्ष में पश्चिमी दुनियां विचार की शक्तियों की महिमा की ओर कुछ २ लग गई है जिसके कारण भारतवर्ष के प्राचीन उपदेशों की प्रतिध्वनि प्रत्येक विचार शील मनुष्य के कानों तक पहुँच गई है।

यह जागृति प्राकृतिक नियमों के अनुकूल हुई है और मानव विकास का एक अंग है। यह बात सत्य है कि इस विषय की शिक्षा आजकल अधिकतर उन्हीं मनुष्यों से प्राप्त

होती है जिनकी केवल थोड़ी ही थोड़ी जागृति अभी इस विषय में हुई है और इसलिये उनके उपदेश थोड़े बहुत भद्दे और अपूर्ण तथा थोड़े बहुत उनकी व्यक्तिगत युक्तियों और विचारों से रँगे हुए होते हैं। इसी कारण इनकी युक्तियों में भेद और परस्पर विरोध पाये जाते हैं। परन्तु सावधान विश्लेषण से ज्ञात पड़ेगा कि इन सब युक्तियों के अन्तर्गत कुछ मौलिक ऐसी तथ्य बातें हैं जिन्हें जगा हुआ मानस सत्य मान करके ग्रहण करता है। इन सब उपदेष्टाओं ने अच्छा ही कार्य किया है और वस्तुतः इनमें से किसी २ की शिक्षा उन मनुष्यों के हृदय तक पहुँच गयी है जिन्हें उनकी उस समय आवश्यकता थी। बहुत से शिष्यों को कुछ ऐसे गुरुओं से बड़ा लाभ हुआ है। ये शिष्य अपने गुरु और अपनी दीक्षाओं से भी अधिक ऊँचे बढ़ गये और स्वयम् गुरु हो गये; दूसरों को उपदेश देने लगे पर उनके उपदेश उनकी व्यक्तिगत युक्तियों से रँगे होते हैं।

उस सावधान शिष्य पर जो मौलिक तत्वों के मूल तक पहुँचने का यत्न करता है, यह विदित हो जायगा कि इन सब उपदेशों का मूल आधार वह पूर्वीय ज्ञान है जो लिखित इतिहास के पहले ही से प्रचलित चला आता है और सर्वकाल तथा सर्व जातियों के योगियों की सम्पत्ति बना रहा है। यह नया विचार प्राचीन तम विचार है, परन्तु जो लोग इसके विषय में आज श्रवण करते हैं उनके लिये इसका आधुनिक रूप नया ही जान पड़ता है और कुछ आगे बढ़ा हुआ योगी जानता है कि इन परस्पर विरुद्ध युक्तियों का

आधार जो मूल तथ्य है उसका प्रकाश कभी न कभी अवश्य होगा और ये परस्पर विरुद्ध युक्तियां व्यर्थ हो जायँगी।

इस पाठ के पढ़नेवाले पाठकों में से अधिकांश मनुष्यों ने विचार की शक्ति के विषय में कुछ न कुछ अवश्य सुना होगा और निश्चय ही कुछ अनुभव प्राप्त किया होगा। इस लिये यह पाठ हमारे शिष्यों के लिये तो पुरानी कहानी होगी। परन्तु हम इस विषय की योग शिक्षा का संक्षिप्त स्पष्ट विवरण दे देवेंगे जिससे प्रगट परस्पर विरुद्ध युक्तियों का मेल हो जावे।

हम इस बात के समझाने का यत्न नहीं करेंगे कि विचार क्या वस्तु है क्योंकि यह बहुत ही गहन विषय है। परन्तु हम इसकी खासियतें, इसके नियमों और इसके परिणामों का वर्णन करेंगे। हम युक्ति को छोड़ कर केवल इसके क्रियात्मक कार्यों का दिग्दर्शन करावेंगे।

आपको जानना चाहिये कि मनुष्य के प्रत्येक कोष से तेज निकला करता है। यह उसी प्रकार निकलता है जैसे सूर्य से प्रकाश, चूल्हे से गर्मी और फल से सुगंध निकला करती हैं। इन पदार्थों में प्रत्येक से किरणें निकला करती हैं जिन्हें क्रमशः प्रकाश गर्मी और सुगंध कहते हैं। एक प्रकार से ये निस्सृतियां उसी वस्तु की अणु हुआ करती हैं जिससे वे निकलती हैं। इस सम्बन्ध में हमें स्मरण रखना चाहिये कि इन निस्सृतियों को फेंकने वाली वस्तु पीछे हटा ली जा सकती है परन्तु ये निस्सृतियां थोड़े या अधिक काल तक रह जाती हैं। उदाहरण के लिये ज्योतिष शास्त्र बतलाता है कि सुदूरवर्ती तारा के नष्ट हो जाने पर भी उससे निकले हुए

प्रकाश की किरणें अपनी यात्रा को जारी रखती हैं; और हम पृथ्वी के निवासियों को उस तारे के नष्ट हो जाने के वर्षों पीछे दिखलाई देती हैं। वस्तुतः जिसे हम किसी समय में देखते हैं वह तारे की वे किरणें हैं जिन्हें उसने बहुत वर्षों पहले छोड़ी थीं। समय का परिमाण उस तारे की पृथ्वी से दूरी पर अवलम्बित रहता है। इसी प्रकार किसी चूल्हे की आग बुझा दी जा सकती है परन्तु गर्मी उसकी कमरे में बहुत अर्से पीछे तक वर्तमान रहेगी। इसी प्रकार थोड़ी सी कस्तूरी किसी कमरे में खोल कर फिर पीछे हटा दी जा सकती है पर तौभी उसकी गन्ध घंटों पीछे तक वर्तमान रहती है। इसी प्रकार विचार भी क्रिया शील अस्तित्व में बहुत काल तक रह सकते हैं जिन्हें किसी मनुष्य ने वर्षों पहले प्रेरित किया था, जिस मनुष्य की मानसिक खासियतें अब बिल्कुल ही परिवर्तित हुई हो सकती हैं या जिसने बहुत दिन पहले ही से शरीर को छोड़ दिया है। स्थान और स्थल प्रायः वहाँ के उन पूर्व निवासियों के विचारों से व्याप्त होते हैं जो बहुत वर्ष पहले ही से वहाँ से हट गये या मर गये हैं।

मन लगातार निस्सृतियों को प्रवाहित कर रहा है जो ओजस् की भाँति मनुष्य से कुछ फीट तक फैली हुई देख पड़ती हैं और जो प्रेरक के शरीर से ज्यों २ दूर होती जाती हैं, त्यों २ अधिक पतली और अदृश्य होती जाती हैं। हमलोग लगातार विचार की लहरों को प्रवाहित कर रहे हैं; और ये लहरें प्रेरक ..ल के समाप्त होजाने पर बादल की भाँति उड़ा करती हैं। उसी प्रकार की और विचार की लहरों से मिलती

हुई पृथ्वी के सुदूरवर्ती स्थानों तक पहुँच जाती हैं। कुछ २ विचार की निस्सृतियां उसी स्थान पर रह जाती हैं जहाँ वे पहले प्रवाहित की गयी थीं और वहाँ ही पड़ी रहती हैं जब प्रतिकूल विचार और अधिक बल के साथ प्रवाहित न की जावें। अन्य विचार जो निश्चित उद्देश्य या प्रबल कामना, भावना और जोश के साथ प्रेरित किये जाते हैं, वे बड़ी शीघ्रता से अभीष्ट वस्तु तक पहुँचते हैं। हमलोग इसके उदाहरणों को ज्यों २ आगे चलेंगे, देखेंगे।

अधिकांश मनुष्य अपने विचारों में बहुत ही कम बल का प्रयोग करते हैं; वस्तुतः सोचना विचारना उनके लिये एक स्वयम् प्रवृत्त क्रिया हो जाते हैं और इसलिये उनके विचार की लहरों में बहुत ही कम गति होती है और वे बहुत दूर तक नहीं जातीं, जब तक कि वैसे ही विचारवाला कोई अन्य मनुष्य उन्हें अपनी ओर आकर्षित न करे।

हम चाहते हैं कि शिष्य लोग इस बात को विशेष रूप से समझ लें कि जब हम कहते हैं कि "विचार वस्तु हैं" तब हम इन शब्दों का अलङ्कार की भांति नहीं व्यवहार कर रहे हैं, किन्तु हम अक्षरशः यथा तथ्य कह रहे हैं। हमारा यह अभिप्राय है कि विचार भी उसी प्रकार से वस्तु हैं, जैसे प्रकाशगर्मी, विद्युत या ऐसी ही अन्य रूप वस्तुएँ हैं। आत्मिक दृष्टि द्वारा विचार देखे जा सकते हैं, वेदनशीलों द्वारा ग्रहण किये जा सकते हैं; और यदि समुचित यंत्र वर्तमान होते तो तौले भी जा सकते थे। विचार जब प्रेरित किये जाते हैं तब वे बादल के रूप के होते हैं और रंग

वही होता है जो उस विचार के अन्तर्गत भावना का रंग होता है। वह पतले भाफ (घनता की मात्रा भिन्न २ हुआ करती है) की भांति होता है और वैसा ही वास्तविक है जैसी हमारे चारो ओर की हवा और वे अनेक गैसें वास्तविक है, जिनसे हम परिचित हैं। इसमें वैसे ही शक्ति भी है जैसी हवा और अन्य गैसों में हुआ करती है।

यहाँ पर हमें यह भी कह देना उचित है कि जब कोई विचार बल के साथ प्रेरित किया जाता है तब उसके साथ २ कुछ प्राण की भी मात्रा जाती है, जो उसे अधिक दृढ़ता और शक्ति देती है तथा आश्चर्य जनक परिणाम दिखलाती है। कभी २ तो प्राण विचारों को जीवट दे देता है और उन्हें जीवित शक्ति बना देता है। थोड़ा आगे चल कर इस विषय में हम और भी अधिक कहेंगे।

इसलिये, हे मित्रो और शिष्यो, कृपा कर के इस बात को सर्वदा स्मरण रखिये कि जब हम कहते हैं कि विचार यथार्थतः वस्तु हैं तब हमारा वही अभिप्राय है जैसा कि हम कहते हैं। यह आपके लिये आवश्यक हो सकता है कि अपने मन में इस बात को इस प्रकार धारण करें कि मन विचार की निस्सृतियों को सर्वदा प्रेरित कर रहा है। कुछ लोग इस भावना को धारण करने के लिये प्रकाश की लहरों की उपमा को ठीक समझते हैं। कुछ लोग चूल्हे की आंच की उपमा को उपयुक्त समझते हैं। अन्य लोग फूलों से गन्ध निकलने की उपमा को ठीक जानते हैं। एक शिष्य, जो अब बहुत ऊँचे पहुँच गया है, विचार की निस्सृतियों की उपमा उबलती हुई चाय

की भाफ़ से ठीक समझता है। आप स्वयम् अपनी उपमा पसन्द कर लीजिये अथवा नवीन उपमा ढूँढ़ लीजिये पर इस भावना को अवश्य अपने मन में धारण कर लीजिये। इन बातों का स्थूल उपमाओं के द्वारा धारण करना सूक्ष्म बातों के धारण करने की अपेक्षा अधिक सरल है।

एक प्रकार के विचार की शक्ति उस बल पर अवलम्बित है जिस बल के साथ वह विचार प्रेरित किया गया था; इसके अतिरिक्त बल का एक और भी मार्ग है जिसके द्वारा विचार अपनी शक्तियों का द्योतन करता है। हमारा अभिप्राय विचार की उस प्रवृत्ति से है जिसके द्वारा एक विचार अपने ही अनुकूल विचारों को आकर्षित करता है और इस प्रकार बल संयुक्त करता है। एक प्रकार का विचार वैसे ही विचारों को अपने आकर्षण क्षेत्र से केवल आकर्षित ही नहीं करता किन्तु विचारों में यह खासियत है कि एक दूसरे से संयुक्त, मिश्रित और सम्मिलित हुआ करते हैं। किसी समुदाय का विचार क्षेत्र साधारणत: वही होता है जो उस जाति की व्यक्तियों के विचारों का समवाय हुआ करता है। मनुष्यों की भांति स्थानों में खासियतें होती हैं; उनके सुदृढ़ और निर्बल मर्म-स्थान होते हैं; उनकी प्रधान प्रवृत्तियां होती हैं। इस बात को वे सब लोग जानते हैं, जो ऐसे विषयों पर विचार करते हैं; परन्तु इसके समझाने की चेष्टा किये ही बिना लोग इस बात को भुला दिया करते हैं। परन्तु इस बात को समझ रखना चाहिये कि कोई स्थान आप से आप इस विषय में अपनी सत्ता नहीं रखता और ये खासियतें किसी स्थान में आप से आप अन्त-

व्याप्त नहीं रहती किन्तु इनका कोई कारण या मूल अवश्य है। योगी लोग जानते हैं कि किसी ग्राम, क़स्बा, नगर या जाति का विचारक्षेत्र उन मनुष्यों के विचारों का समवाय होता है जो उस ग्राम, कस्बा, नगर या जाति में रहते हैं या पहले रहते थे। अजनबी मनुष्य जब उस सम्प्रदाय में प्रवेश करता है तब उस भिन्न क्षेत्र का अनुभव करता है और यदि वे सम्मिलित विचार उसके अनुकूल नहीं होते तो उसे असुख प्रतीत होता है और वह मनुष्य उस स्थान को छोड़ देना चाहता है। यदि कोई मनुष्य विचार संसार के इन नियमों को न समझ कर किसी स्थान में अधिक काल तक रहता है तो अत्यन्त सम्भव है कि वह मनुष्य उस स्थान के समवेत विचारों से अभिभूत होजाय और उसके स्वभाव में परिवर्तन प्रारम्भ होजाय और वह समवेत विचार की भूमिका में चढ़ या उतर जाय। स्थानों की ये खासियतें नये मनुष्यों के आगमन और निवास से परिवर्तित हो सकती हैं। थोड़े से भी प्रबल सोचने और विचारनेवाले मनुष्य अपने नित्य के जीवन में विचार की ऐसी लहरों को प्रवाहित करेंगे जो उस स्थान के समवेत विचार पर अपना रंग जमा देंगी। एक प्रबल सोचनेवाले का विचार बहुत से ऐसे मनुष्यों के निर्बल और निरुद्देश्य विचार पर प्रभाव डालेगा, जो केवल निष्क्रिय विचारों को प्रेरित किया करते हैं। क्रियात्मक विचार निष्क्रिय विचारों पर प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार किसी जाति का भाव उस जाति की व्यक्तियों के समवेत भाव के अनुकूल हुआ करता है। यदि कोई मनुष्य ऐसे नगर में जाय

जिसमें अत्यन्त शक्ति द्योतन हो रही है तो वह वहाँ के क्रियात्मक भाव का शीघ्र ही अनुभव करता है जो उसके हृदय में भी तदनुकूल विचारों को उदित करता है। यदि कोई मनुष्य आलस्ययुक्त मृतप्राय सम्प्रदाय में चला जाय तो उसकी क्रिया शक्तियां मृतप्राय हो जावेंगी और उसी स्थान की भावना श्रेणी को क्रमशः पहुँच जावेंगी। इसमें सन्देह नहीं कि जिस पुरुष या स्त्री ने अपनी प्रबल व्यक्ति को सुदृढ़ बना लिया है, वह उतनी सरलता से अभिभूत न हो सकेगा जितनी सरलता से विपरीत खासियतवाला मनुष्य अभिभूत होगा, और वास्तव में वह वहाँ के जन समुदाय के भावों को ऊपर उभाड़नेवाला होगा। परन्तु साधारणतः मनुष्य उस स्थान के समवेत विचारों से अधिकतर अभिभूत हुआ करता है, जहाँ वह अपना अधिक समय व्यतीत करता है।

इसी प्रकार भवन दूकानें और इमारतें भी उन मनुष्यों के प्रधान विचार को धारण किये रहते हैं, जो मनुष्य उनमें रहते हैं अथवा रह चुके हैं। कोई २ स्थान मनहूस बदनाम होते हैं, यद्यपि उनकी नहूसत प्रबल पुरुष या स्त्री के मंगल विचारों से दूर हो सकती है परन्तु जब तक दूर नहीं होती तब तक साधारण मनुष्यों पर प्रभाव डालती है। कतिपय गृहों में उजाला, प्रेम, सुख इत्यादि का प्रसार रहता है और कतिपय गृह रूखे और उद्वेग जनक होते हैं। दूकानों में उनके स्वामियों के विचार झलका करते हैं। किसी २ दूकान से विश्वसनीयता प्रगट होती है और किसी २ दूकान में अपनी थैली और दूकानवालों से बहुत ही सावधान रहना पड़ता है।

जिन स्थानों पर अपराध किये जाते हैं वहाँ उद्वेग जनक भाव उपजते रहते हैं जो उन प्रबल विचारों से उत्पन्न हुए रहते हैं जो अपराधियों तथा मजलूमों द्वारा प्रवर्तित किये गये थे। जेलखानों का विचाराकाश वेदनशीलों के लिये बहुत ही भयंकर हुआ करता है। जहाँ पाप अथवा नीच पाशविक भोग विलास हुआ करते हैं वह स्थान उच्च मानस वाले मनुष्यों को बहुत ही घृणास्पद हुआ करता है। अस्पतालों के विचाराकाश आगन्तुकों पर प्रभाव डालता है। पुराने गिर्जाघरों का विचाराकाश वहाँ जानेवालों के मानस में शान्ति के भाव को उदय करता है। हम साधारण नियम कह रहे हैं क्योंकि ऐसे भी अनेक प्रभाव होते हैं जो इन भावों को परिवर्तित और तबदील करने की प्रवृत्ति रखते हैं।

व्यक्तियों के विषय में यह बात है कि किसी २ व्यक्ति से आनन्द, शान्ति और धैर्य के भाव प्रवाहित हुआ करते हैं और कोई २ व्यक्ति अनमेल, अविश्वास और अशान्ति फैला देते हैं। बहुत से लोगों के समागम से सुख, उत्साह और धैर्य पर पानी फिर जाता है। इस बात के प्रमाण में सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं; परन्तु शिष्यों को ऐसे उदाहरण अपने ही अनुभव और निरीक्षण से मिल सकते हैं।

भिन्न २ मनुष्यों के भिन्न २ विचारों की लहरें अपने २ अनुकूल विचारों की लहरों को आकर्षित करती हैं और उनकी ओर आकर्षित होती हैं। वे मानसाकाश में विचारों की तहें बनाती हैं, ठीक उसी प्रकार से जैसे बादल मिल कर इस भौतिक आकाश में पुंज बनाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है

कि विचार की एक तह इस भौतिक आकाश के एक खंड पर अधिकार कर लेती है और वहाँ दूसरे विचार-बादल रहने ही नहीं पाते। इसके विपरीत विचारों के ये अणु जो इस विचार-बादल को बनाते हैं, कम्प की भिन्न २ मात्राओं से बने हैं, और एक ही भौतिक आकाशखंड सहस्रों प्रकार के विचार विषयों से व्याप्त रहता है जो स्वतंत्र रूप से इधर उधर प्रवाहित होते हैं और परस्पर एक दूसरे को भेदते हुए निकल जाते हैं और परस्पर एक दूसरे को बाधा नहीं पहुँचाते। परन्तु एक दूसरे में मिल नहीं जाते जब तक वे एक ही प्रकार के न हों; यद्यपि कभी २ अल्प कालीन संयोग बन जाया करते हैं। इस पाठ में हम इस विषय के विस्तार में नहीं प्रवेश कर सकते; केवल अपने शिष्यों को साधारण भाव दे देते हैं जिसका विस्तार समय २ पर वे आप कर सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति अपने मन से उत्पन्न हुए विचारों के अनुरूप विचारों को खींचता है और इन खिंचे हुए विचारों का प्रभाव उसके विचारों पर पड़ता है। यह आग में इन्धन डालना है। यदि कोई मनुष्य ईर्षा या द्वेष के विचारों को कुछ समय के लिये धारण करे तो उसके पास ऐसे इतने विचार बाहर से आ जायंगे कि वह भयभीत हो जा सकता है। और जितने ही अधिक समय तक वह ऐसे विचार को धारण किये रहेगा उतनी ही अधिक संख्या में वैसे ही बाहरी विचार उसके मन में आवेंगे। वह मनुष्य अपने तईं वैसे विचारों का केन्द्र बना रहा है। यदि वह इन विचारों को इतने काल तक धारण किये रहे कि ये विचार उसके मन पर

अभ्यस्त और संस्कृत होजायँ तो वह अपने अनुकूल ऐसे बाह्य विधानों और ऐसी दशाओं को आकर्षित करेगा जिससे उसे अवकाश मिल जाय कि इन विचारों को क्रिया रूप में परिणत कर दे। मानसिक दशा केवल अनुरूप विचारों को ही आकर्षित नहीं करती वरन् वह उस विचार-वाले को ऐसे बाह्यविधानों और दशाओं में ले जाती है जो इसके विचारों के चरितार्थ होने में सहायक होते हैं! यदि किसी के मन में पाशविक भावों का मनन हुआ करता है तो सारी प्रकृति इस बात की चेष्टा करेगी कि वह ऐसी स्थिति में होजाय कि इन पाशविक भावों को चरितार्थ करे।

इसके विपरीत यदि कोई मनुष्य उच्च और उत्तम विचारों को धारण करेगा तो काल पाकर वह अपने विचार संस्कारों की अनुकूल दशा में आकर्षित होगा और विचाराकाश से ऐसे विचारों को आकर्षित करेगा जो उसके विचारों में संयुक्त हो जावेंगे। केवल इतना ही सत्य नहीं है किन्तु प्रत्येक मनुष्य अपनी ओर वैसे ही विचार वाले मनुष्यों को आकर्षित करेगा और उन्हीं की ओर आप आकर्षित होगा। हम अपने ही कलह पर आज के विचारों के द्वारा अपने बाह्य विधान, संगति और दशा को बनाते हैं। कलह के विचार थोड़ा या बहुत अपना प्रभाव आज डाल रहे हैं परन्तु आज यदि हम आकांक्षा करें तो आज के विचार क्रमशः पुराने और व्यक्त विचारों को परिवर्तित कर या दूर हटा सकते हैं।

हम ऊपर कह चुके हैं कि प्राण संयुक्त विचार साधारण

विचारों की अपेक्षा अधिक प्रबल होते हैं। वस्तुतः प्रत्येक क्रियात्मक विचार थोड़ा या बहुत प्राण के साथ ही प्रेरित होता है। प्रबल आकांक्षावाला मनुष्य अचेतन रूप से (अथवा यदि वह इस विषय का अभिज्ञ है तो चेतना पूर्वक) विचार को तदनुकूल मात्रा में प्राण के साथ प्रेरित करता है। ऐसे विचार लक्ष्य स्थल पर गोली की भांति पहुंचते हैं न कि साधारण विचार की निस्सृतियों की भांति बहुत धीरे २ उड़ा करते हैं। कुछ वक्ताओं ने इस कला को प्राप्त कर लिया है और जानकार लोग जान जाते हैं कि इनके कथनों के पीछे किस परिमाण से विचार का बल लगा हुआ है। एक प्रबल और सुदृढ़ सोचनेवाला, जिसका विचार प्राण से भरपूर है प्रायः उन बातों को उत्पन्न कर देता है, जिन्हें विचारों की रूपावली कहते हैं—अर्थात् ऐसे विचारों को उत्पन्न कर देता है, जिनमें इतना जीवट रहता है कि उन्हें जीवित शक्तियां कह सकते हैं। ऐसे विचार रूप जब किसी मनुष्य के मानस-क्षेत्र में आते हैं तब उतनी ही शक्ति रखते हैं जितनी उस विचार का प्रेरक रखता यदि वह उपस्थित होता और अपने विचार को आपके ऊपर गम्भीर वार्तालाप में प्रेरित कर सकता। जो लोग योग की सिद्धियों और विकाशों में ऊपर पहुँचे हुए हैं प्रायः विचार रूपों को भेजा करते हैं कि अन्य सहयोगी जीवों की सहायता हो जब कि उन्हें कोई कष्ट या आवश्यकता आन पड़े। हमलोगों में से बहुतों ने ऐसे सहायक विचारों के परिणाम का अनुभव किया है कि हम में परिवर्तन तो होगया और एक नई शक्ति और धैर्य का

संचार होगया पर उसके कारण और मूल का स्वप्न में भी पता न लगा।

स्वार्थी कामनाओं और उद्देश्योंवाले मनुष्यों द्वारा अचेत रूप से विचार रूप प्रेरित हुआ करते हैं और बहुतों पर प्रभाव डाला करते हैं परन्तु तौ भी यदि कोई मनुष्य अपने मानस-क्षेत्र को प्रेम और विश्वास से भरपूर रक्खे तो उसे इस प्रभाव से भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है। भक्ति और विश्वास ये दो अवस्थायें ऐसी हैं कि यदि इनकी ओर विचार की लहरें प्रेरित की जायँ अथवा विचाराकाश में इन्हें और लहरें मिलें तो वे इन्हें दूर हटा सकती हैं। विचार की श्रेणी जितनी ही उच्च होगी उतनी ही अधिक उसमें शक्ति होगी। निर्बलातिनिर्बल मनुष्य यदि अपने मन को विश्व प्रेम तथा ईश्वर में विश्वास से परिपूर्ण रखता है वह अधिक से अधिक शक्तिमान मनुष्य की अपेक्षा, जो उस शक्ति को स्वार्थी अभिप्रायों में प्रयोग करता है, अधिक प्रबल है। इस प्रकार की उच्चतम शक्तियां उन्हीं मनुष्यों को सिद्ध होंगी जो महान आत्मिक विकास वाले मनुष्य हैं और जिन्होंने अविकसित मनुष्यों के नीच उद्देशों को बहुत दिनों से पीछे छोड़ दिया है। ऐसे मनुष्य सर्वदा शक्ति और सहायता के विचारों की लहरों को भेजा करते हैं जिन्हें आवश्यकतावाले मनुष्य आकर्षित और ग्रहण कर सकते हैं। मनुष्य को केवल इतना ही करना पड़ता है कि उन लोगों से सहायता प्राप्त करने की आकांक्षा करे। जो सहायता देने में समर्थ हैं; और एक न एक वे अपनी ओर प्रबल मनुष्यों के उन विचारों की लहरों को आकर्षित

करने लगते हैं जो लगातार सहायकों के मानस से निकला करती हैं, सहायक चाहे शरीर धारण किये हो चाहे नहीं। यदि मानव जाति केवल स्वार्थी विचारवाले मनुष्यों ही के आश्रित होती तो वह कभी नाश को प्राप्त हो गई होती, परन्तु बातों का विधान कुछ और ही प्रकार से है।

विचार रूपों के संसार में केवल वे ही विचार भयावह हैं जो हमारे नीच विचारों के अनुरूप होते हैं। उदाहरण के लिये यदि हम नीच स्वार्थी विचारों को धारण करें तो हम उसी प्रकार के उन विचार रूपों के आगमन और प्रवेश के लिये खुल जाते हैं, जो मानस आकाश में छिपे पड़े हैं, जो हमारे मन पर अधिकार कर लेते हैं और ऐसे कार्यों के करने की हमें प्रेरणा करते हैं, जिन्हें करने से हम पहले आरम्भ में दूर भगे होते। हमारा अधिकार है कि जिस मानसिक पाहुने को हम चाहें निमंत्रित करें। इस लिये हमें सावधान रहना चाहिये कि हम किस पाहुने के नाम निमंत्रण भेज रहे हैं।

हमारी प्रबल कामनाएँ ऐसे विचाररूपों की रचना करती हैं जो उन कामनाओं के पूर्ण होने की ओर चेष्टा करते हैं, चाहे ये कामनायें भली हों या बुरी। हम इन्हीं विचार रूपों के द्वारा वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और अपने आप वस्तुओं की ओर आकृष्ट होते हैं। वे शक्तिमान सहायक हो जाते हैं और कभी अपनी क्रिया से चूकते नहीं हैं। हमें सावधान रहना चाहिये कि हम कैसे उन्हें प्रेरित कर रहे हैं। कभी किसी प्रबल कामना के विचार को प्रेरित मत कीजिये यदि वह उच्चतम आपे से पसन्द न किया गया

हो। नहीं तो आप उन्हीं कामनाओं के परिणाम में फंस जावेंगे और इस पाठ के सीखने में बड़ा कष्ट भोगेंगे कि अनुचित बातों के लिये आत्मिक शक्तियों का प्रयोग कदापि न करना चाहिये। आप ऐसी ही बातों से दण्डित होते हैं न कि ऐसी बातों के लिये। सब के ऊपर यह बात है कि दूसरों की हानि करने के लिये कभी प्रबल कामना के विचार को मत प्रेरित कीजिये, क्योंकि ऐसे कार्य का केवल एक ही परिणाम है और उसका अनुभव एक कडुआ पाठ होगा। ऐसा मनुष्य उसी रस्सी पर फाँसी पा जायगा जिस रस्सी को उसने औरों के लिये तैयार किया था। बुरा विचार यदि पवित्र मानसवाले मनुष्य के प्रति प्रयोग किया जायगा तो वह उलट कर प्रयोक्ता पर आवेगा और विचाराकाश से अधिक शक्ति प्राप्त किये आवेगा। इन बातों पर इतना जोर देने के लिये मैं अपने पाठकों से क्षमा का प्रार्थी हूँ; परन्तु चूंकि सर्वदा ऐसे संयोग उपस्थित हुआ करते हैं कि ये पाठ उन मनुष्यों के हाथ में पड़ जाँय जो उनके ग्रहण करने के अयोग्य हैं, इस लिये आवश्यक है कि इस विषय के साथ ही साथ सावधान रहने की भी सूचना रहे कि जिससे अविचारी मनुष्य इन पाठों का अनुचित प्रयोग न करे और अपनी तथा अन्यों की हानि न करें। यह भय की सूचना असावधान और अविचारी मनुष्यों के लिये दी जाती है।

जिन लोगों ने विचार की शक्तियों का अध्ययन किया है वे इस बात से अभिज्ञ हैं कि उन मनुष्यों को आश्चर्यजनक ऐसी सम्भावनायें प्राप्त हो जाती हैं जो लोग बल संचित

विचारों से लाभ उठाया चाहते हैं, जो प्राचीन और वर्तमान काल के सोचनेवालों के मन से निकलते हैं और जो आकाँक्षा करने पर उन मनुष्यों की ओर आकर्षित होने के लिये तैयार हैं जो जानते हैं कि इनसे कैसे लाभ उठाया जाय।

इस विषय पर बहुत ही थोड़ा लिखा गया है। यह बात बड़ी ही अद्भुत है जब कि यह बात ख्याल में लाई जाती है कि जो लोग इस विषय से लाभ उठाया चाहते हैं उनके सम्मुख आश्चर्यजनक सम्भावनायें हैं। सब विषयों के ऊपर बहुत विचार प्रयुक्त किया गया है; और आज जो मनुष्य किसी पथ पर कार्य कर रहा है वह अपनी ओर अत्यन्त सहायक उन 'विचारों को आकर्षित कर सकता है जो उसके प्रिय विषय के उपयोगी हैं। यथार्थ में बड़े २ आविष्कारों और तरकीबों में से कुछ २ दुनियां के कुछ बड़े आदमियों को इसी प्रकार प्राप्त हुए हैं; यद्यपि जिन्हें वे प्राप्त हुए उन लोगों ने यह नहीं समझा कि उनको कहां से उनका ज्ञान प्राप्त हुआ। बहुत से मनुष्य एक ही विषय पर जी लगा कर सोचते हैं और अपने को उन बाहरी विचारों के प्रभाव के लिये खोल देते हैं जो उनके मन की ओर दौड़ते हैं और परिणाम यह होता है कि अभीष्ट तरकीब–खोयी हुई शृंखला–मिल जाती है।

अप्रगटित विचार जो प्रारम्भ में कामना के साथ प्रेरित किये गये थे, लगातार प्रगट होने के द्वार को ढूँढ़ा करते हैं और सरलतापूर्वक उस मन की ओर खिंच जाते हैं, जो उन्हें क्रिया में प्रगट करनेवाला होता है--अर्थात् यदि कोई मौलिक सोचनेवाला ऐसी भावनाओं का द्योतन

करता है, जिन्हें क्रिया रूप में परिणत करने की उसे शक्ति या योग्यता नहीं है, तो उसके इस विषय के प्रबल विचार बरसों बाद तक दूसरे मनों को ढूँढ़ते रहेंगे जिनके द्वारा वे प्रगट हों। और जब ऐसे विचार ऐसे मनुष्य के मानस की ओर आकृष्ट होते हैं जो उन विचारों को क्रिया रूप में प्रगट करने के लिये पुष्कल शक्ति रखता है तो वे इसके मानस में इस प्रकार ढुलके पड़ते हैं कि यह मनुष्य समझता है कि हमें ईश्वर से ज्ञान प्राप्त हुआ है।

यदि कोई मनुष्य किसी ऐसे प्रश्न पर सोच विचार करता हो जो उसे हरा देता हो, तो उस मनुष्य को चाहिये कि उन विचारों के प्रति ग्रहणशील वृत्ति को धारण करे जो उसी विषय के हों, और यह बहुत ही सम्भव है कि जब वह आप सोचना बन्द कर देगा तो प्रश्न का हल उसके सम्मुख इस प्रकार उदित हो जायगा जैसे जादू से हुआ हो। दुनियां के कुछ बड़े सोचने, लिखने, भाषण करने, और आविष्कार करनेवाले मनुष्योंने इस नियम के उदाहरणों का अनुभव किया है, यद्यपि उनमें से बहुत ही कम लोग उसके कारण को जान सके हैं। मानस संसार बहुत ही उत्तम २ और अप्रगाटित उन विचारों से भरा है, जो उस मनुष्य की प्रतीक्षा कर रहे हैं जो उनको प्रगट और चारितार्थ करे। वे लोग उससे लाभ उठावें जो अब तैय्यार हो गये हैं।

इसी प्रकार से मनुष्य अपनी ओर ऐसे बली और सहायक विचारों को आकृष्ट कर सकते हैं जो उनके मन की उदासीनता और ह्रास के आक्रमणों का दमन कर सकें। विचार

के संसार में संचित शक्ति का बृहत् परिमाण है, और जिस मनुष्य को आवश्यकता है वह अपनी आवश्यकतानुसार उसे खींच सकता है। यह केवल अपने ही धन को वसूल करने का मामला है। संसार का संचित विचार आप ही का है। आप क्यों नहीं उसे ग्रहण करते?

दूसरा पाठ

दूरानुभूति और परोक्ष दर्शन

दूरानुभूति की स्थूल परिभाषा मन का मन के साथ ऐसा लगाव है जो उन पाँच इन्द्रियों के परे है जिनमें भौतिक विज्ञान मनुष्य को परिमित करता है अर्थात् चक्षु, श्रवण, घ्राण, रसना और स्पर्श। चक्षु, श्रवण और स्पर्श यही तीन इन्द्रियाँ अधिकतर प्रयोग में आती हैं। भौतिक विज्ञान के अनुसार ऐसा होगा कि यदि दो मन इन्द्रियक्षेत्र की सीमा से बाहर स्थापित हों तो उनके बीच कोई लगाव संचारित नहीं हो सकता। और ऐसी अवस्थाओं में यदि लगाव संचारित प्रमाणित हो तो यह बुद्धिपूर्वक अनुमान होगा कि इन पाँच इन्द्रियों के अतिरिक्त मनुष्य को और भी इन्द्रियाँ हैं।

योगी लोग जानते हैं कि भौतिक विज्ञानियों द्वारा जानी हुई पाँच इन्द्रियों के अतिरिक्त और भी इन्द्रियाँ मनुष्य की हैं। इस विषय में अधिक गंभीर प्रवेश करने के बिना ही और इस पाठ के उद्देशों ही पर परिमित रहते हुए हम कह सकते हैं कि पाँच शारीरिक इन्द्रियों के अतिरिक्त मनुष्य के पाँच सूक्ष्म इन्द्रियाँ भी होती हैं जो भौतिक इन्द्रियों की प्रत्यंग हैं जो मानसिक भूमिका में अपना कार्य करती हैं और जिनके द्वारा मनुष्य दर्शन, श्रवण, घ्राण और स्पर्श बिना बाहरी इन्द्रियों के व्यवहार ही के कर सकता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य को एक छठीं विशेष इन्द्रिय भी होती है जिसके द्वारा वह मनुष्यों के मन से निकले हुए

विचारों को जान सकता है, यद्यपि ये मनुष्य स्थान में इससे बहुत ही दूरी पर हों।

इस विशेष छठीं इन्द्रिय और पाँच सूक्ष्म इन्द्रियों में एक बहुत ही बड़ा भेद है। वह भेद यह है कि पाँच सूक्ष्म इन्द्रियाँ पाँच बाह्य इन्द्रियों की प्रत्यंग हैं और ठीक उसी प्रकार से मानस आकाश में कार्य करती हैं जैसे बाह्य इन्द्रियाँ भौतिक भूमिका में कार्य करती हैं, प्रत्येक बाह्य इन्द्रिय के स्थान में एक २ सूक्ष्म इन्द्रिय होती है, यद्यपि मानसिक अंकन शारीरिक इन्द्रियों द्वारा नहीं ग्रहण किये जाते परन्तु अपने विशेष मार्ग से चेतना तक पहुँचते हैं ठीक उसी प्रकार से जैसे भौतिक अंकन इन्द्रियों द्वारा चेतना तक पहुँचते हैं। परन्तु यह विशेष छठवीं इन्द्रिय (जिसे हम दूरानुभूति द्योतक इन्द्रिय कह सकते हैं) एक भौतिक इन्द्रिय है जो बाह्य अंकनों को ग्रहण करती है और साथ ही इसकी प्रत्यंग एक उसी प्रकार की सूक्ष्म इन्द्रिय है जैसे अन्य इन्द्रियों की प्रत्यंग सूक्ष्म इन्द्रियाँ हुआ करती हैं। दूसरे शब्दों में इसका यह अभिप्राय है कि इसकी भी वैसी ही भौतिक इन्द्रिय है जैसे नाक, आँख और कान आदि इन्द्रियाँ हुआ करती हैं। इसी विशेष इन्द्रिय द्वारा मनुष्य दूर की अनुभूतियों को ग्रहण करता है। इसका मानसिक प्रत्यंग मानसिक भूमिका में किसी २ परोक्ष दर्शन की दशा में व्यवहृत होता है। अब इस दूरानुभूति द्योतक शारीरिक इन्द्रिय का वर्णन किया जाता है जिसके द्वारा मनुष्य उन कम्पों और विचार लहरों को ग्रहण करते हैं जो दूसरों के मन से उठा करती हैं।

मेरुस्तम्भ के शिखर के सीधे ऊपर खोपड़ी के बीचों बीच के निकट, मस्तिष्क में स्थापित लालिमा लिये हुए भूरे रंग की एक वस्तु कोण के शकल की, मस्तिष्क की पिछली कोठरी के आगे तीसरी कोठरी की तह से मिली हुई पाई जाती है। यह गुद्दी का पुँज है जिसमें छोटे २ खुरखुरे चूनेदार अणु होते हैं जो कभी २ मस्तिष्क वालुका कहे जाते हैं। इस अवयव को पाश्चात्य शरीर विज्ञानी पाइनल ग्लैण्ड Pineal Gland या पाइनल बाडी Pineal Body कहते हैं।

पाश्चिमी विज्ञानी इस अवयव के कार्य, अभिप्राय और उपयोग से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। उनकी कितावें इतना ही कह कर इस विषय को छोड़ देती हैं कि पाइनल बाड़ी का कार्य समझ में नहीं आता और इसके गुद्दीदार अणुओं तथा मस्तिष्क-वालुका की उपस्थिति तथा उसके उपयोग को समझने के लिये कोई यत्न नहीं किया जाता। तथापि किसी २ ग्रन्थकार ने इतना लिख दिया है कि यह अवयव यौवनस्थों की अपेक्षा बच्चों में बड़ा होता है, और यौवनस्थों में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिकतर पुष्ट होता है। कैसा सारगर्भित कथन है।

योगी लोग शताब्दियों से जानते आये हैं कि यह पाइनल अवयव वह अवयव है जिसके द्वारा मस्तिष्क उन कम्पों द्वारा अंकन ग्रहण करता है, जो दूसरों के विचारों से उत्पन्न होते हैं। संक्षेप में यह दूरानुभवी लगाव का अवयव है। इस अवयव के लिये यह आवश्यक नहीं है कि इस में कोई वाह्य द्वार हो जैसा कि कान, नाक और आंख में हुआ करता

है, क्योंकि विचार कम्प स्थूल शरीर के पदार्थों को ठीक उसी प्रकार भेद जाते हैं जैसे प्रकाश के कम्प काच और एक्सरेज के कम्प लकड़ी पत्थर आदि को भेद जाते हैं। विचार कम्पों की निकटतम उपमा बेतार की तारबर्क्की के कम्पों से दी जा सकती है। मस्तिष्क का यह कोनीला अवयव मानस के बेतार की तारबर्क्की के ग्रहण करने का यंत्र है।

जब कोई मनुष्य विचार करता है तो वह आस पास के आकाश में कम्पों को उत्पन्न करता है जो कम्प ठीक उसी भाँति सब ओर प्रवाहित होते हैं, जैसे प्रकाश के कम्प अपने उत्पत्तिस्थान से सब ओर प्रवाहित होते हैं। ये कम्प दूसरे मस्तिष्कों के दूरानुभवी अवयव से टकरा कर ऐसी मस्तिष्क क्रिया उत्पन्न करते हैं जिससे ग्रहीता के मास्तिष्क में उस विचार का उदय होजाता है। यह उदित विचार अवस्था के अनुसार चेतनाक्षेत्र में आ सकता है या प्रवृत्ति मानस ही में पड़ा रह सकता है।

"विचार में शक्ति" शीर्षक वाले पहले पाठ में हम विचार के प्रभाव और बल के विषय में वर्णन कर आये हैं, और हम सलाह देते हैं कि इस पाठ के समाप्त करने पर शिष्य फिर पहले पाठ को पढ़े जिससे दोनों पाठ एकत्र उसके मन में अंकित हो जावें। पहले पाठ में हमने दिखलाया है कि विचार कम्प क्या करते हैं और इस पाठ में हम बतलाते हैं कि ये कम्प कैसे ग्रहण किये जाते हैं।

तब, इस पाठ के लिये दूरानुभूति वह क्रिया है जिसमें कोई चेतना या अचेतनापूर्वक उन कम्पों या विचार लहरों

को ग्रहण करता है, जो चेतना या अचेतनापूर्वक दूसरों के मनों से चलाई गयी है। इस प्रकार से दो या अधिक मनुष्यों के बीच इच्छा पूर्वक विचार परिवर्तन ही दूरानुभूति है, और उसी प्रकार जब कोई मनुष्य दूसरे मनुष्यों द्वारा प्रवाहित आकाशगत अनिच्छित विचार लहरों को ग्रहण कर लेता है तो वह भी दूरानुभूति ही है। विचार लहरें प्रखरता और बल में भिन्न २ प्रकार की हुआ करती हैं जैसा कि हम पहले पाठ में कह आये हैं। इन लहरों के प्रवर्तक अथवा ग्रहीता अथवा दोनों की एकाग्रचित्तता प्रवर्तन के बल को तथा ग्रहण की स्पष्टता और सहीपन को प्रखर करती है।

परोक्षदर्शन।

अदृश्य भूमिका के विषय में प्रवेश किये बिना परोक्ष-दर्शन की लीला का बोधगम्य वर्णन करना बहुत ही कठिन है, क्योंकि परोक्षदर्शन अदृष्ट भूमिका की घटना है और उसी विषय से सम्बन्ध रखती है। परन्तु हम अदृश्य भूमिका के सूक्ष्म विवरण में नहीं जा सकते, क्योंकि हम एक पाठ पूरा उसीमें लगाया चाहते हैं। इसलिये, यह समझ कर कि शिष्य को उचित समय पर अदृश्य भूमिका की प्रकृति और घट-नाओं का ज्ञान दिया जायगा, हम अपने सम्मुखस्थ विषय पर आगे चलते हैं। इस पाठ के लिये हम अपने शिष्यों से इस बात को स्वीकार करने के लिये अनुरोध करेंगे कि मनुष्य के भीतर ऐसी शक्तियां हैं जिनसे वह उन कम्पों का अनुभव कर सकता है जो उसकी स्थूल इन्द्रियों के अगोचर हैं। प्रत्येक

स्थूल इन्द्रिय के साथ तदनुकूल ऐसी अदृश्य इन्द्रिय है जो ऊपर कहे हुए कम्पों के लिये खुली रहती है और जो ऐसे कम्पों का अर्थ करके मनुष्य की चेतना को अर्पण करती है।

इस तरह से अदृश्य दृष्टि अदृश्य प्रकाशकम्पों को बहुत दूर से ग्रहण करने के योग्य मनुष्य को बनाती है, कि इन किरणों को मनुष्य दृढ़ पदार्थों में भी होकर प्राप्त कर सके, और आकाश आदि के विचार रूपों को ग्रहण कर सके। गूढ़ श्रवण, गूढ़ शब्द कम्पों को बहुत दूर से तथा बहुत काल के पश्चात् भी श्रवण करने के योग्य मनुष्य को बना देता है, क्योंकि सूक्ष्म कम्प अब भी वर्तमान रहते हैं। अन्य गुप्त इन्द्रियां अन्य स्थूल इन्द्रियों के अनुकूल होती हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि दृष्टि और श्रवण की गुप्त इन्द्रियों की भांति ये स्थूल इन्द्रियों की एक विस्तार मात्र हैं। हम ख्याल करते हैं कि इस विषय को एक अशिक्षित मनोयोगी ने कई वर्ष हुए कि बहुत ही अच्छी यद्यपि भद्दी रीति से इन गुप्त इन्द्रियों की स्थूल इन्द्रियों से अनूकूलता समझाने की कोशिश में क्याही अच्छा कहा कि "गुप्त इन्द्रियां ठीक स्थूल इन्द्रियों की भाँति की होती हैं—केवल अधिक तीव्र होती हैं।" हम नहीं समझते कि इस अशिक्षित स्त्री की अपेक्षा हम इसका बेहतर वर्णन कर सकते हैं।

सब मनुष्यों को ऊपर वर्णित गुप्त इन्द्रियाँ होती हैं, परन्तु केवल थोड़े ही से मनुष्यों ने इनका ऐसा विकाश किया है कि वे इनका सचेतन उपयोग कर सकें। कुछ लोगों को कभी २ इन गुप्त इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्षता की झलक आजाती है, पर

ये लोग इन झलकों के मूल को नहीं समझते, केवल इतना ही जानते हैं कि कोई बात इनके मन में आगई है, और अकसर इन अंकनों को व्यर्थ की भावना समझ कर त्याग देते हैं। जो लोग गुप्त इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्षण में जाग रहे हैं, प्रायः पहले वैसे ही अनगढ़ और बेडौल रीति से जागते हैं जैसे छोटे बच्चे अपनी स्थूल इन्द्रियों द्वारा अंकनों के ग्रहण करने और समझने में जगते हैं। आँख, कान तथा स्पर्श द्वारा अंकनों के ग्रहण करने में बच्चे को दूरी की थाह लगाना पड़ता है। इसी प्रकार मनोयोग के बच्चे को भी ऐसा ही अनुभव करना पड़ता है, इसीलिये आरम्भ में गड़बड़ और असन्तोषजनक फल होता है।

सरल परोक्षदर्शन।

परोक्ष-दर्शन की घटनाओं के अनेक रूपों को बोधगम्य रूप से समझने के लिये, विशेष करके उन रूपों को समझने के लिये जिन्हें "दिक् परोक्षदर्शन" कहा जाता है, अर्थात् वह शक्ति जिसके द्वारा बहुत दूरी पर से चीजें देखी जाती हैं, हमको इस योग-शिक्षा को अवश्यमेव स्वीकार करना होगा (जिसे आधुनिक भौतिक विज्ञान के वर्तमान आविष्कार प्रमाणित करते जाते हैं) कि भूतों के सब रूप लगातार अपनी किरणों को चतुर्दिक् फेंका करते हैं। ये गुप्त किरणें साधारण प्रकाशकिरणों की अपेक्षा कई गुना अधिक सूक्ष्म हुआ करती हैं, परन्तु ये उसी प्रकार गति करती हैं और अदृश्य दृष्टि द्वारा उसी प्रकार गृहीत और

अंकित हुआ करती हैं जैसे साधारण प्रकाश-किरणें स्थूल दृष्टि द्वारा गृहीत और अंकित हुआ करती हैं। साधारण प्रकाश किरणों की भांति ये गुप्त प्रकाश किरणें दूर अनन्त चली जाती हैं और उच्च योगी की संविकसित और सुशीक्षित गुप्त इन्द्रियाँ इन अंकनों को इतनी दूरी से ग्रहण करती हैं कि साधारण पाठक के, जिसने इन विषयों को अध्ययन नहीं किया है, विश्वास में नहीं आतीं। ये गुप्त प्रकाश किरणें दृढ़ भौतिक पदार्थों को सरलता से पार कर जाती हैं और परोक्षदर्शी दृष्टि के सम्मुख दृढ़तम और घनिष्ट पदार्थ भी पारदर्शक हो जाते हैं।

यहाँ पर लिखित परोक्ष दर्शन के अनेक रूपों में परोक्ष दर्शकों की भिन्न २ श्रेणियों की परोक्ष दर्शन शक्तियाँ हुआ करती हैं। कुछ लोग तो असाधारण शक्ति दिखाते हैं, कुछ साधारण और अधिकांश लोग कदाचित् कभी भुवर्भूमिका में प्रत्यक्षण शक्ति का अंकुर मात्र दिखा देते हैं। यह दशा सरल परोक्ष दर्शन और उच्च रूप का परोक्ष दर्शन दोनों में होती है जिस का हम अभी वर्णन करेंगे। इस लिये कोई मनुष्य साधारण परोक्ष दर्शन की कुछ विशेषताएं रखते हुए भी अन्यों से विरहित हो सकता है।

सरल परोक्ष दर्शन से हमारा अभिप्राय निकट ही के गुप्त अंकनों का ग्रहण करना है जिसमें परोक्षदर्शी को दूरस्थ वस्तुओं के देखने की शक्ति नहीं होती और न उन बातों के जानने की शक्ति होती है जो भूत अथवा वर्तमान काल में संघटित हुईं। जिस मनुष्य को सरल परोक्ष दर्शन

की पूरी शक्ति है वह दृढ़ पदार्थों में हो कर भी अदृश्य प्रकाश लहरों को ग्रहण कर सकता है। वह सचमुच पत्थर की दीवार में हो कर चीजों को देख सकता है। दृढ़ पदार्थ अर्ध पारदर्शक हो जाते हैं और उनमें आते हुए कम्पों को वह उसी प्रकार देखता है जैसे कोई द्रष्टा समुचित औजार द्वारा एक्सरेज़ की किरणों को दृढ़ पदार्थों को पार करते देखता है। वह पास वाले बन्द दरवाजे के कमरे के भीतर की घटनाओं को प्रगट देख सकता है। वह अभ्यास के द्वारा बन्द चिट्ठी के विषय को पढ़ सकता है। वह अपने पैर के नीचे अनेक गज तक गहरी भूमि को देख सकता है और वहाँ के खनिज पदार्थों को बता सकता है। वह अपने निकटस्थ मनुष्य के शरीर के पार की वस्तुओं को देख सकता है और शरीर के भीतरी अवयवों की क्रियाओं का निरीक्षण कर सकता है और बहुत सी दशाओं में शारीरिक पीड़ा के कारणों को बतला सकता है। अपने सम्पर्क में आये हुए मनुष्यों के तेज को देख सकता है और उसके तैजस रंगों को देख कर बतला सकता है, कि किस प्रकार के विचार उनके मनों मे उत्पन्न हो रहे हैं। वह गुप्त श्रवण द्वारा ऐसी बातों को सुन सकता है जो साधारण श्रवण की शक्ति के परे की बातें हैं। वह अपनी दूरानुभाविनी गूढ़ शक्तियों से जो उसकी साधारण दूरानुभाविनी इन्द्रियों की अपेक्षा कई गुना तीव्रतर हो जाती है। दूसरों के विचारों का भी अनुभव कर सकता है। वह विदेह आत्माओं और उन अन्य गुप्त रूपों को देख सकता है जिन का वर्णन उस विषय के पाठ में है। संक्षेप में, उसके सम्मुख

अंकनों की एक नवीन दुनियाँ खुल जाती है। कहीं २ विरल दशाओं में सरल परोक्ष दर्शन की शक्ति रखने वाले मनुष्य छोटी वस्तुओं के परिमाण को बढ़ा देने की शक्ति को क्रमशः विकासित कर लेते हैं—अर्थात् अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा वे दृष्टि केन्द्र को ऐसा बना लेते हैं जिससे पदार्थों की दिव्य प्रतिमूर्ति उनके सम्मुख उसी प्रकार बढ़ी हुई दृष्टि गोचर होती है जैसे खुर्दबीन द्वारा देखनेवाले मनुष्य को दिखाई देता है। यह शक्ति बहुत ही विरल होती है और आप से आप तो कदाचित् ही विकास पाती है—यह शक्ति केवल बढ़ी और विकसित दिव्य शक्तियों वाले मनुष्यों ही द्वारा आधिकृत होती है। इस शक्ति का विभेद दिक् परोक्ष दर्शन के वर्णन में दिखाया जायगा जिस को हम अभी उठाते हैं।

दिक्परोक्ष दर्शन।

बहुत से साधन हैं जिनके द्वारा मनोविज्ञानी या बढ़ा हुआ योगी उन मनुष्यों, वस्तुओं, दृश्यों और घटनाओं को जान सकता है जो द्रष्टा से बहुत दूर और भौतिक दृष्टि के क्षेत्र से बहुत परे हैं। इनमें से केवल दो ही साधन इस पाठ के शीर्षक के अन्तर्गत आवेंगे। अन्य रीतियाँ जीवन की उच्च भूमिकाओं की हैं और सिद्धों तथा अति उच्च योगियों को छोड़ दूसरों की शक्ति के परे की हैं। उपरि कथित दो रीतियाँ भुवर्भूमिका दिक्परोक्ष दर्शन की श्रेणी में आती हैं और इसलिये इस पाठ की अंग हैं। इनमें से पहली तो वही है जिसे हम सरल परोक्ष दर्शन कह कर वर्णन कर आये

हैं। यह वही बात है परन्तु एक बड़े पैमाने में। यह इस प्रकार साधी जाती है कि सुदूरस्थित पदार्थों पर मनोयोग को केन्द्रीभूत करने तथा उन्हें उस साधन द्वारा दृष्टिगोचर करने से होती है जिसे योगी लोग भुवर्नालिका कहते हैं और जिसका वर्णन आगे किया जाता है। दूसरी रीति अपने लिंग शरीर को सचेतन अथवा अचेतन रूप से प्रेषित करने तथा भुवर्दृष्टि द्वारा तत्स्थान ही पर उस दृश्य के देखने से सिद्ध होती है। यह रीति भी इसी पाठ में आगे चल कर वर्णन की जावेगी।

हमने भुवर्प्रकाश किरणों का वर्णन किया है जो सब पदार्थों से निकला करती हैं और इन्हीं के द्वारा भुवर्दृष्टि सम्भव होती है। सरल परोक्ष दर्शन के वर्णन में हमने आप को बतला दिया है कि कैसे परोक्ष द्रष्टा निकटस्थ पदार्थों को अपने भुवर्दृष्टि द्वारा उसी प्रकार देख सकता है जैसे वह भौतिक दृष्टि द्वारा उन्हें देखता है, एक दशा में तो भुवः प्रकाश किरणों का प्रयोग होता है और दूसरी में भौतिक प्रकाश किरणों का। परन्तु जैसे मनुष्य अपनी साधारण भौतिक दृष्टि द्वारा बहुत दूर के पदार्थों को नहीं देख सकता यद्यपि प्रकाशकिरणें अखंडित ही रहती हैं, वैसे ही सरल परोक्ष द्रष्टा बहुत दूर के पदार्थों को अपनी भुवर्दृष्टि द्वारा नहीं देख पाता, यद्यपि भुवःप्रकाश किरणें अखंडित ही रहती हैं। भूर्भूमिका में अपने दृष्टिक्षेत्र के परे के पदार्थों को देखने में मनुष्य को दूरबीन का प्रयोग करना पड़ता है। वैसे ही भुवर्भूमिका में भी उसे भुवर्दृष्टि की सहायता के लिये किसी साधन

का प्रयोग करना होगा जिससे दूरास्थित पदार्थों का स्पष्ट अंकन प्राप्त हो सके। यह सहायता मनुष्य की अपनी ही भुवर्गठनि द्वारा आती है और यह विचित्र भुवर्शक्ति है जो दूरबीन के शीशे का काम देती है और दूर से आई हुई किरणों को विस्तृत कर देती है और उन्हें इतनी बड़ी कर देती है कि वे मन द्वारा पहचानी जा सकती हैं। यह शक्ति फलतः दूरबीन की भाँति है, यद्यपि वस्तुतः यह उस दूरबीन शक्ति के परिवर्द्धन से होती है जिसका वर्णन सरल परोक्ष दर्शन में किया गया है। यह दूर दर्शन शक्ति मनोयोगियों में भिन्न भिन्न हुआ करती है, कुछ लोग तो केवल कतिपय मीलों तक देख सकते हैं और अन्य लोग उतनी ही सरलता से पृथ्वी के सब भागों से अंकन प्राप्त कर लेते हैं। और कुछ लोगों ने तो कभी २ दूसरे ग्रहों पर के दृश्यों को भी देख लिया है।

यह दूरानुभवी भुवर्दृष्टि उस साधन द्वारा कार्य में लाई जाती है जिसे योगी लोग "भुवर्दूरवीक्षण" यंत्र कहते हैं जो "भुवस्तार" "भुवःधारा" आदि की भांति का होता है, और ये सब "भुवर्नलिका" के प्रकारान्तर हैं। यह भुवर्नलिका भुवर्भूमिका में विचारधारा उत्पन्न कर देने से बनती है और विचार के साथ २ प्राण की अलम् मात्रा प्रवाहित करने से कायम रहती है; इसी धारा के द्वारा सब प्रकार के भुवर्कम्पों का आवागमन बहुत सरल हो जाता है, चाहे वे कम्प दूरानुभवी विचार कम्प हों, भुवर्प्रकाश कम्प हो अथवा भुव-र्शब्द कम्प हों। यह द्रष्टा और दृश्य—प्रवाहक और ग्रहीता—अथवा एक भाव के दो मनुष्यों—को एक घने लगाव में लाना

है। यह भुवर्नलिका ऐसा साधन है जिस के द्वारा भिन्न २ मानसिक घटनाएं संभव होती हैं।

भुवर्दूरवीक्षण अथवा "दिक्परोक्षदर्शन" की दशा में द्रष्टा सचेतन वा अचेतन रूप से एक भुवर्नलिका अपने को दूरस्थित दृश्य से जोड़ती हुई रच देता है। भुवर्प्रकाश कम्प इस रीति से अधिक सरलता पूर्वक उस तक पहुँच जाते हैं और बाहरी अन्य अंकन कीलित या अवरुद्ध होजाते हैं जिस से मन केवल उसी स्थान से अंकनों को ग्रहण करता है जहाँ मनोयोग केन्द्रीभूत किया गया है। ये अंकन भुवर्द्रष्टा तक पहुँचते हैं और उसकी दूरवीक्षणी शक्ति द्वारा विस्तृत किये जाते हैं और तब उसकी भुवर्दृष्टि द्वारा समझे जाते हैं। यह दूरवीक्षिणी शक्ति केवल दूरवीक्षण शीशा का काम देती है जिस में होकर भुवर्प्रकाश किरणें गति करती हैं और जिसके द्वारा विस्तृत होकर वे इस बड़े परिमाण की हो जाती हैं कि भुवर्दृष्टि द्वारा पहचानी जा सकती हैं; यह बात ठीक उसी तरह होती है जैसे दूरबीन के शीशों द्वारा साधारण प्रकाश किरणें साधारण दृष्टि के लिये विस्तृत की जाती हैं। यह उपमा बहुत ही अनुकूल है और इस प्रक्रिया की स्पष्ट भावना करने में आपकी सहायक होगी।

भुवर्नलिका प्रायः द्रष्टा की इच्छा या उसकी प्रबल कामना से बनती है। कभी २ दशाओं के अनुकूल होने से किसी अनुद्दिष्ट भावना से भी भुवर्धारा बन जाती है और द्रष्टा अचिंतित तथा अज्ञात दृश्यों को देखने लगता है। इस में उस अनुद्दिष्ट भावना से अन्य मानसिक धाराओं से सम्बन्ध

स्थापित हो गया हो अथवा वह अनुदिष्ट भावना सहस्रों मानसिक कारणों में से किसी एक के द्वारा आकर्षण और संयोजन के नियमों के अन्तर्गत आकृष्ट हो गई हो। परन्तु प्रयोक्ता की इच्छा प्रायः समर्थ हुआ करती है कि अनुदिष्ट धाराओं को रोके और अभीष्ट मनुष्य या स्थान से त्वरित सम्बन्ध जोड़ दे। बहुत से मनुष्य इस शक्ति को भले स्ववश रखते हैं; दूसरे लोग इसे मनमाना आते जाते पाते हैं; कुछ और लोग हैं जो जब तक योग मूर्छा की दशा में न हो इस शक्ति से विरहित रहते हैं। बहुत से लोग पारदर्शक कांच की गोली या ऐसी ही अन्य वस्तुओं को भुवनेलिका रचने में सरल सहायक पाते हैं; यही पारदर्शक गोली धारा के उद्भवस्थान का काम देती है। पारदर्शक गोली का निरीक्षण केवल दिक् परोक्ष दर्शन भुवनेलिका ही द्वारा है; द्रष्टा द्वारा जो दृश्य देखे जाते हैं इस रीति से देखे जाते हैं। इस बड़े विषय के मूल सिद्धान्तों ही के वर्णन करने का हमें अवकाश है, जिससे मानसिक घटनाओं के अनेक रूपों की बोध गत भावना शिष्य को हो जाय। हमे खेद है कि हमें परोक्ष वीक्षण शक्ति के मनोरंजक उदाहरणों के वर्णन का अवसर नहीं है जो वैज्ञानिक दृष्टि से प्रमाणित हो चुके हैं। जो कुछ हो हम तुम पर परोक्ष वीक्षण का अस्तित्व साबित करने नहीं जाते हम मान लेते हैं कि तुम इसे वास्तविक समझते हो कम से कम इसके विरोधी नहीं हो। हमारा स्थान इस घटना के संक्षेप वर्णन और समझाने में लगेगा न कि संशयी लोगों को इसकी सत्यता प्रमाणित करने में। यह ऐसी बात है कि

जिसे प्रत्येक मनुष्य को अपने सन्तोष के लिये अपने ही अनुभव द्वारा प्रमाणित करना होगा; इसे बाहरी प्रमाण नहीं सिद्ध कर सकते।

दूसरी रीति बहुत दूरास्थित चीज़ों के देखने की यह है कि अपने लिंग शरीर को सचेतन या अचेतन रीति से प्रेषित किया जाय और भुवर्दृष्टि के द्वारा दृश्य को तत्स्थान ही पर देख लिया जाय। यह रीति-भुवर्नलिका रीति की अपेक्षा कठिनतर और विरल लभ्य है, यद्यपि बहुत से मनुष्य लिंग शरीर द्वारा यात्रा करते हैं और उन दृश्यों को देखते हैं जिन्हें वे स्वप्न दर्शन या मानसिक आँखों के दृश्य कहते हैं।

हम लिंग शरीर का वर्णन किसी पहले के पाठ में कर चुके हैं। यह मनुष्य के लिये सम्भव है कि वह अपने लिंग शरीर को प्रेषण करे या लिंगशरीर द्वारा इस भूमि के किसी स्थान तक यात्रा करें, यद्यपि बहुत ही कम लोग अपने ऐसे सामर्थ्य से परिचित हैं और आरम्भ करता को बड़े अभ्यास और सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। लिंग यात्री तत्स्थान ही पर पहुँच कर देख सकता है कि यहां चारो ओर क्या हो रहा है और भुवर्नलिका के प्रयोग करने वाले मनोयोगी की भाँति एक छोटा ही दृश्य देखने के लिये परिमित नहीं है। उसका लिङ्ग शरीर उसकी इच्छा या सङ्कल्प का अनुसरण करता है और जहाँ के लिये आज्ञा पाता है वहाँ चला जाता है। सुशिक्षित योगी किसी स्थान पर पहुँचने की केवल इच्छामात्र करता है और उसका लिङ्ग शरीर प्रकाश की तीव्र-गति अथवा उससे भी तीव्रतरगति से उस स्थान पर पहुँच

जाता है इसमें सन्देह नहीं कि असिद्ध योगी का इतना अधिकार अपने लिङ्ग शरीर पर नहीं होता और इसके प्रबन्ध में वह थोड़ा बहुत भद्दापन करता है। मनुष्य प्रायः निद्रावस्था में अपने लिङ्ग शरीर द्वारा यात्रा करते हैं; कुछ थोड़े से मनुष्य जागृत दशा में भी अचेतन रूप से यात्रा करते हैं और किसी२ नें ऐसा ज्ञान प्राप्त किया है कि जिससे वे सचेतन और इच्छापूर्वक अपनी जागृत दशा में यात्रा करते हैं। लिङ्ग शरीर सर्वदा अपने स्थूल शरीर से रेशम की भाँति पतले भुवर धागे से जुटा रहता है और दोनों शरीरों में लगाव बना रहता है। हम लिङ्ग शरीर के विषय में और कहीं अधिक कहेंगे। हमने यहाँ पर केवल दिग्दर्शन मात्र करा दिया है कि लोग समझ जाँय कि इसके द्वारा भी परोक्षदर्शन हो सकता है परन्तु परोक्षदर्शन की अन्य रीतियों की अपेक्षा यह रीति उच्चतर रीति है।

भूतकालिक परोक्षदर्शन।

कालगत परोक्षदर्शन, जहाँ तक भूतकाल की घटनाओं से सम्बन्ध है, उच्च योगियों के लिये दुर्लभ शक्ति नहीं है—सच तो यह है कि वैसे योगियों के लिये यह साधारण बात है और यही शक्ति, अपूर्णरूप से विकसित, बहुत से साधारण उन योगियों में भी पाई जाती है जो अपनी शक्ति की विशेषता से अभिज्ञ नहीं हैं। इस पिछली श्रेणी के मनुष्यों में कालगत परोक्षदर्शन थोड़ा बहुत असन्तोषजनक हुआ करता है क्योंकि अनेकों आगे कहे हुये कारणों से अपूर्ण और भ्रान्त हुआ करता है।

यह कथन कि मनुष्य विगत घटनाओं और दृश्यों को भुवर्दृष्टि द्वारा देख सकता है। समझाने के लिये सरल और दिक्परोक्ष दर्शनों की अपेक्षा भिन्न ही विवरण की आवश्यकता है क्योंकि सरल और दिक्परोक्षदर्शन में मनुष्य उस बात को देखता है जो तत्काल किसी स्थान पर घटित हो रही हो अथवा कतिपय क्षण पहले घट चुकी हो, और इस भूतकालीन परोक्षदर्शन में द्रष्टा ऐसी बातों को देखता है जो बहुत पहले घट चुकी है और जिसके सब लेखा प्रगट रूप से नष्ट हो चुके हैं। ठीक यही विवरण है कि "प्रगट रूप से नष्ट हो चुके हैं।" योगी लोग जानते हैं कि कभी कोई वस्तु नष्ट नहीं होती और भूतों का उच्च भूमिकाओं में प्रत्येक दृश्य, कार्य, विचार और वस्तु जो कभी भी रही अथवा घटित हुई हो, उनके अविनष्ट और अपरिवर्तनीय लेखा बने रहते हैं। ये आकाश लेखा भुवर्भूमिका में नहीं होते किन्तु उससे बहुत ऊँची भूमिका में होते हैं और उनका प्रतिविम्ब भुवर्भूमिका में ठीक उसी प्रकार पड़ता है जैसे आसमान और बादलों का प्रतिविम्ब सरोवर के गर्भ में पड़ता है और वह द्रष्टा जो आसमान को नहीं देख सकता उसके प्रतिविम्ब को जल में देख सकता है और जैसे उसकी दृष्टि जल की लहरों से विचलित हो जाती है वैसे ही भूतकाल के इन लेखाओं का भुवर्दर्शन भी भुवर्प्रकाश के क्षोभों के कारण विचलित और अपूर्ण हो जाता है। योगी लोग बहुत काल से जल को भुवर्प्रकाश का चिन्ह मानते आये हैं—अब समझा आपने क्यों ?

ये आकाश लेखायें सब गत बातों की स्मृति रखती हैं

और जिसकी पहुँच इन तक है, वह गत बातों को वैसे ही पढ़ सकता है जैसे वह किसी किताब को पढ़ सकता है। परन्तु बहुत उच्च ही योगी इन लेखाओं तक स्वतन्त्र गति प्राप्त कर सकते हैं और इन्हें पढ़ने की शक्ति रख सकते हैं। परन्तु बहुतों ने थोड़ी बहुत ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है जिससे वे थोड़ा बहुत स्पष्टता के साथ इन लेखाओं के भुवर्गत प्रतिबिम्बों को पढ़ सकते हैं। जिन लोगों ने कालगत परोक्षदर्शन की शक्ति जगाई है वे इन प्रतिबिम्बों को ऐसा देखते हैं मानों वे दृश्य वस्तुत: उनके सम्मुख घटित हो रहे हैं। यह ठीक उसी प्रकार होता है जैसे मनुष्य फोनोग्राफ के द्वारा उन मनुष्यों की वाणी सुनता है जो बहुत काल हुआ कि इस शरीर को छोड़ गये और जैसे हम लोगों की वाणी फोनोग्राफ द्वारा शताब्दियों पीछे सुनी जा सकती है। नये साधकों को इन लेखाओं की प्रकृति समझाना असम्भव है—इन्हें समझाने के लिये हमारे पास शब्द नहीं है—हम भी जो इन शब्दों को लिख रहे हैं इन आकाश लेखाओं की आन्तरिक गूढ़ता की अल्प ही समझ रखते हैं—तब हम उन दूसरों को कैसे समझा सकते हैं जो हमसे भी पीछे हैं! हम केवल एक ही उपमा का ख्याल कर सकते हैं वह भी अपूर्ण है। मनुष्य के मस्तिष्क में लाखों कोठरियाँ हैं और प्रत्येक में किसी न किसी गत घटना, विचार या क्रिया का लेखा है। हम इन लेखाओं को दूरवीक्षण यंत्र अथवा रसायनिक जाँच द्वारा नहीं पा सकते तौ भी वे वहाँ हैं और काम में लाये जा सकते हैं। प्रत्येक क्रिया, विचार और कृत की स्मृति जीवन पर्य्यन्त मस्तिष्क में रहती

है, यद्यपि उसका स्वामी उसे स्मरण में न ला सके। क्या इस उपाय से आप आकाशिक लेखा की भावना कर सकते हैं? विश्व की स्मृति कोठरियों में सब गत बातों के लेख अंकित और संचित हैं—जिनकी पहुँच उन लेखाओं तक है वे पढ़ सकते हैं—और जो लोग लेखाओं के भुवर्गत प्रतिबिम्बों को देख सकते हैं वे भी थोड़ी बहुत सचाई और चातुरी से पढ़ सकते हैं। इस बोधागम्य विषय के समझाने में हम इतना ही कर सकते हैं। जो लोग इन शब्दों में छिपे गूढ़ तथ्यों के लिये तैय्यार हैं उन्हें इनकी झलक मिल जायगी अन्य लोगों को अपनी तैय्यारी की प्रतीक्षा करनी होगी।

भविष्यकाल परोक्ष दर्शन।

कालगत परोक्ष दर्शन जहाँ तक भविष्यज्ञान अथवा भविष्य दर्शन से सम्बन्ध है वह साधारण समझ के लिये और भी कठिनतर है। हम इसके समझाने का यत्न न करेंगे किन्तु केवल इतना कह देते हैं कि भुवर्प्रकाश में कारण कार्य के बड़े नियम के धुंधले और अपूर्ण प्रतिबिम्ब हैं अर्थात् भविष्य घटनाओं की छाया पड़ी है। बहुत थोड़े ही लोगों की दृष्टि इन छायाओं और प्रतिबिम्बों के डालने वाली वस्तुओं तक पहुँच सकती है, परन्तु इनसे अधिकतर ऐसे मनुष्य हैं जिनमें ऐसी मानसिक शक्ति है कि जिससे वे अपने भुवर्वीक्षण द्वारा इन विकृत और अस्थिर तथा दुर्बल प्रतिबिम्बों को देख सकते हैं। ये प्रतिबिम्ब विकृत अस्थिर तथा दुर्बल भुवर्प्रकाश रूपी सरोवर की लहर के कारण हुआ

करते हैं। शक्ति की उच्चतर श्रेणियाँ हैं जिनके द्वारा प्रत्येक काल में कुछ थोड़े से लोग भविष्य के कुछ अंश में झांकी लगा सकते हैं; परन्तु ये शक्तियाँ बेचारी भुवर्भूमिका की शक्तियों से बहुत ऊँचे की है, जो यद्यपि अशिक्षित योगी को आश्चर्यमय प्रतीत होती हैं तौ भी उन लोगों के लिये आश्चर्य-मय नहीं हैं जो इस पथ पर आगे बढ़ गये हैं। हमें खेद है कि इन थोड़े ही से शब्दों द्वारा इस विषय का वर्णन कर के हमें आगे बढ़ना पड़ता है। परन्तु हम बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि सब लोग अपने आवश्यक प्रकाश को पावेंगे—ठीक उस समय जब वे तैयार होंगे—न एक क्षण पीछे—न एक क्षण पहले। हमें जो कुछ करना है वह यही हैं कि एक बात यहाँ कह दें—एक इशारा वहाँ कर दें—बीज का वपन कर दें। फल शीघ्र फले और आनन्ददायक हो।

परोक्ष श्रवण।

भुवरिन्द्रियों द्वारा भुवर्भूमिका में श्रवण करना परोक्ष श्रवण है। जो कुछ हम परोक्ष दर्शन के विषय में कह आये हैं करीब करीब वही परोक्ष श्रवण के विषय में भी कहा जा सकता है, अन्तर केवल इतना ही है कि भिन्न भुवरिन्द्रिय का प्रयोग होता है। सरल परोक्ष श्रवण सरल परोक्ष दर्शन की भाँति होता है; दिक् परोक्षश्रवण दिक् परोक्ष दर्शन की भाँति होता है; भूतकालिक परोक्षश्रवण भूतकालिक परोक्षदर्शन की तरह होता है; वहाँतक कि भविष्य परोक्ष दर्सन भी परोक्ष-श्रवण की घटना में समता की छाया रखता है; इन दोनों

भुवः क्रियाओं में केवल इतना ही भेद है कि ये दो भिन्न भुवरिन्द्रियों द्वारा साधी जाती हैं। कुछ परोक्षद्रष्टा परोक्षश्रोता भी होते हैं और कुछ में परोक्षश्रवण की शक्ति नहीं होती। इसके विपरीत कुछ लोगों को परोक्षश्रवण की तो शक्ति होती है पर परोक्षदर्शन की नहीं होती। अन्ततो गत्वा परोक्षश्रवण की शक्ति परोक्षदर्शन की उपेक्षा विरलतर होती है।

वस्तु द्वारा मानसिक अनुभव।

जैसे हम कभी कभी प्रगट रूप से भूली हुई बात को उस वस्तु को देख कर स्मरण कर लेते हैं जा उस बात से हमारी स्मृति में संयुक्त है, उसी प्रकार हम कभी कभी किसी घटना या दृश्य से सम्बन्ध रखने वाली वस्तु को स्पर्श कर के उस घटना या दृश्य के आकाशिक लेखा के भुवः प्रतिबिम्ब को खोलने में समर्थ हो सकते हैं। प्रायः उस वस्तु और दृश्य की गत कथा के आकासिक लेखाओं के उस विषेय खण्ड से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। धातु, पत्थर, कपड़ा या बाल के टुकड़े से वह मानसिक दृश्य खुल जायगा, जो गत काल में उस वस्तु से सम्बन्ध रखता था। उसी प्रकार जीवित मनुष्यों के कपड़े, बाल या अन्य किसी धारण की गई वस्तु के द्वारा हम अपने को उनके साथ लगाव की दशा में ले आ सकते हैं और इस प्रकार लगाव हो जाने से भुवर्नलिका सरलता पूर्वक स्थापित की जा सकती है। वस्तु द्वारा मानसिक अनुभव परोक्षदर्शन ही का एक या अधिक रूप है जो मनुष्यों या वस्तुओं के बीच किसी संयोजक पदार्थ के लाने या इन

मनुष्यों और वस्तुओं से सम्बन्ध रखने वाले किसी पदार्थ द्वारा साधा जाता है। यह मानसिक घटना की भिन्न कक्षा नहीं है, किन्तु उन्हीं कक्षाओं का भेद मात्र है जिसमें कभी २ कई कक्षा के परोक्षदर्शन एक में मिला कर प्रगट होते हैं।

ये मानसिक शक्तियाँ कैसे जगायी जायँ।

हमसे प्रायः यह प्रश्न किया जाता है जो शायद हमारे शिष्यों में से अधिकांश के हृदय में, कम से कम उन लोगों के हृदय में है जिन्होंने अभी तक मानसिक शक्ति का कोई प्रगट विकास नहीं दिखलाया है, कि "मनुष्य कैसे अपने भीतर की गुप्त शक्तियों को जगा सकता है ?"

ऐसे विकास की अनेक रीतियाँ हैं, जिनमें से थोड़ी सी तो इच्छा करने के योग्य हैं और बहुत सी अनिष्ट हैं, और कुछ थोड़ी सी तो निस्सन्देह हानिकारक हैं।

हानिकारक रीतियों में वे हैं जो कतिपय वन्य जातियों में व्यवहृत होती हैं और जो हमारी जाति के भी किसी भूले हुये मनुष्य में पाई जाती हैं। हमारे कहने का अभिप्राय उन दूषित व्यवहारों से है जैसे मादक द्रव्यों का प्रयोग, टोना करनेवालों की घृणित क्रियायें, घुमटा लानेवाले नृत्य, और अन्य बातें जिनका उल्लेख करना भी चातुर्य नहीं है। इन क्रियाओं से नशा की भाँति अस्वाभाविक दशा उपस्थित हो जाती है और नशा की आदत के समान शारीरिक और मानसिक बर्बादी लाती है। यह बात सत्य है कि इन क्रियाओं के करनेवाले एक नीच प्रकार की मानसिक या भुवर शक्ति जगा लेते हैं

परन्तु वे निश्चय अपने पास अनिष्ट श्रेणी की भुवस्सत्ताओं को आकर्षित कर लेते हैं और अपने को उन नीच श्रेणी की सत्ताओं के लिये खोल देते हैं जिन्हें बुद्धिमान लोग दूर हटाते हैं और कभी भी निकट नहीं फटकने देते। हम इन क्रियाओं और इनके परिणामों से सब को सावधान किये देते हैं। हमारा काम अपने शिष्यों को उन्नत करना है न कि उन्हें टोना करने वालों और जादूगरों की कक्षा में घसीटना है।

अन्य क्रियायें जो थोड़ी बहुत अनिष्ट हैं यद्यपि उतनी हानिकर नहीं है जितनी ऊपर लिखी क्रियायें हैं, वे किसी २ श्रेणी के हिन्दुओं और पश्चिमी लोगों में भी पाई जाती हैं। हमारा अभिप्राय स्वतः मूर्छा लाना या अन्यों द्वारा मूर्छित होना है जिससे एक ऐसी मानसिक स्थिति उपस्थित हो जाय कि जिससे मनुष्य भुवर्लोक की झांकी पा जाय। तबतक किसी चमकीले पदार्थ की ओर ताकना जबतक मूर्छा के समान दशा न हो जाय, या किसी मंत्र का जपना कि जब तक मस्तिष्क न घूम जाय, येही इस श्रेणी की क्रियायें हैं। इसी श्रेणी में दूसरों के द्वारा मूर्छित होना भी है।

मानसिक विकास की दो रीतियाँ हैं जिनका योगी लोग अभ्यास करते हैं और जिनको हम यहाँ लिखेंगे। पहली और सर्वोच्चरीति तो यह है कि पहले आध्यात्मिक शक्तियों और प्रकृति को जगा कर तब मानसिक शक्तियाँ जगाई जावें; तब मानसिक शक्तियाँ बोध और शक्ति का साथ बिना किसी विशेष शिक्षा के प्रयोग की जा सकती है—उच्च प्राप्ति के साथ नीचे की भी प्राप्ति होती जाती है। दूसरे शब्दों में यह कहा

जाता है कि योगी आध्यात्मिक सिद्धि में लगा हुआ केवल मानसिक शक्तियों की समझ की ही प्राप्ति से सन्तुष्ट हो जाता है, और जब वह आध्यात्मिक उच्च ज्ञान और उच्च विकास को पहुँच जाता है तब वह नीचे लौटकर उन औजारों का प्रयोग करता है जो उसके हाथ में तैय्यार रहते हैं और जिनके प्रयोग को वह अब समझ जाता है। राजयोग में हमने इस साधन का वर्णन किया है। उसमें मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों के विकास ही का वर्णन है।

एक दूसरी रीति भी है जिसके द्वारा योगशास्त्र के कुछ वे शिष्यगण अपने भीतर मानसिक शक्तियों को जगाते हैं, जो आध्यात्मिक भूमिका पर पहुँचने के पहले ही अपने उद्योग और अभ्यास से इस ज्ञान को प्राप्त करना पसन्द करते हैं। इस मार्ग में कोई दोष नहीं पाया जाता है यदि शिष्य इन्हीं मानसिक शक्तियों ही को सिद्धि का अन्त न समझ ले और यदि शिष्य सर्वदा सब की मंगल कामना रक्खे और इस भुर्व-भुमिका के लाभों से अपनी असली आध्यात्मिक उन्नति से विचलित न हो जाय। कुछ योगी शिष्य लोग पहले शरीर को मन के वश करते हैं, तब प्रवृत्ति मन को इच्छा की प्रेरणा से बुद्धि का वशवर्ती बनाते हैं। शरीर को वशवर्ती बनाने की पहली शिक्षा "श्वास विज्ञान" नामक पुस्तक में दी गई है और उसका पूर्ण विस्तार "हठयोग" नामक ग्रन्थ में किया गया है। मानसिक अधिकार स्वयम् एक बड़ा विषय है।

यदि शिष्य अपने आप अनुभव करना चाहे तो हम सलाह देते हैं कि वह अपने आपे पर अधिकार करने का

अभ्यास करे। यह अधिकार मौनावस्था में मन को एकाग्र करने से होता है। आप लोगों में से बहुतों ने पहले ही मानसिक शक्तियों का प्रादुर्भाव देखा होगा, और जिस प्रकार आपको प्रादुर्भाव हुआ हो उसी पथ पर आप अभ्यास करते जाइये। यदि आप दूरानुभूति करना चाहें तो अपने मित्रों में से किसी के साथ अभ्यास कीजिये और फल देखते जाइये। थोड़े अभ्यास से आश्चर्यजनक उन्नति होगी। यदि परोक्ष-दर्शन करना चाहें तो पारदर्शक गोली या स्वच्छ जल भरे हुए ग्लास के द्वारा अभ्यास कीजिये कि मन की एकाग्रता में सहायता मिले और भुवर्नलिका का प्रारम्भ हो। यदि वस्तु द्वारा "मानसिक अनुभव" करना चाहें तो कोई वस्तु, जैसे—कंकड़, सिक्का, कुञ्जी आदि ले लीजिये और चुपचाप उसे देखते रहिये तथा जो जो अङ्कन मन में प्रवाहित हों उनपर ध्यान रखते जाइये; ये अङ्कन पहले धुँधले रूप से आपके मन के सम्मुख आवेंगे।

इस पाठ में भिन्न श्रेणियों की मानसिक घटनाओं का जो विवरण दिया गया है वही आपको रीति और अभ्यास बतलावेगा।

परन्तु इन्हीं मानसिक अभ्यासों ही से मत विचलित हो जाये। ये मनोरञ्जन और शिक्षाप्रद हैं, परन्तु विकास की इस अवस्था में ये आवश्यक नहीं है। अपने मन को सर्वदा उस उद्देश पर लगाये रक्खो—जो अभीष्ट है—असली आपे का विकास—आपके भीतर जो "मैं हूँ" उसकी चरितार्थ—और उससे भी बढ़ कर सब के साथ एकता की चरितार्थता।

तुम पर शान्ति विराजे, हे शिष्य ! तुम हमारे प्रेम के भाजन हो और हम तुम्हारा मङ्गल चाहते हैं। यदि तुम्हें हमारी सहानुभूति और मानसिक सहायता की आवश्यकता प्रतीत हो तो ध्यान में उसकी याचना करो और हम तदनुकूल कार्य करेंगे।

तीसरा पाठ ।

मानव शारीरिक तेज ।

मानव शारीरिक तेज जैसा इस पाठ में व्यवहृत किया गया है उस वस्तु से बहुत ही भिन्न है, जिसे साधारण लोग पौरुष तेज कहा करते हैं। पौरुष तेज मन का गुण है और विचार की शक्तियों के विषय से सम्बन्ध रखता है। इसके विपरीत मानव शारीरिक तेज प्राण का एक रूपान्तर है और साधारण विषय के इसी भाग से सम्बन्ध रखता है।

मानव शारीरिक तेज यह शब्द निर्बल है परन्तु ऐसे ही अन्य शब्दों की भाँति अच्छे शब्दों के अभाव से व्यवहृत किया जाता है। संस्कृत भाषा इस विषय के प्रत्येक भाग के लिये ठीक २ शब्द रखती है, जो शब्द इस विषय के ज्ञान की वृद्धि के साथ व्यवहार में आते गये। यह मानव शारीरिक तेज केवल मनुष्य ही के भाग का नहीं है क्योंकि नीच जन्तु भी इसे किसी २ परिमाण में धारण करते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि मनुष्य इसे अपनी इच्छा द्वारा चेतना पूर्वक प्रेरित कर सकता है और नीच जन्तु इसे थोड़ा बहुत अचेतन अवस्था मे व्यवहार करते हैं जिससे बुद्धि की कुछ सहायता नहीं रहती और न इच्छा ही का शासन रहता है। नीच जन्तु और मनुष्य दोनों सर्वदा इस तेज को अर्थात् प्राण शक्ति को अज्ञात रूप से बाहर फेंका करते है, परन्तु विकसित अर्थात्

मानसिक शिक्षित मनुष्य इस शक्ति को अपने शासन में रखता है और या तो इसे बहुत ही संचित किये रहता है या इसके बड़े परिमाण का निस्सारण करता है, और इसे किसी निश्चित स्थान पर भेज सकता है। वह इसे अपनी विचार लहरों के सम्बन्ध में व्यवहृत कर सकता है जिससे उनमें वहन करने की अधिकतर शक्ति आ जाय।

यद्यपि मनुष्य हम पर अनावश्यक पिष्ट पोषण का दोष लगावेंगे तौभी हम आप लोगों के मनपर इस बात को अङ्कित कर दिया चाहते हैं कि प्राणशक्ति विचारशक्ति से बहुत भिन्न ही शक्ति है, पर एक बात है कि यह प्राणशक्ति जैसा ऊपर कहा जा चुका है विचार लहरों के सम्बन्ध में प्रयुक्त हो सकता है। यह प्राणशक्ति प्रकृति की अन्धशक्ति है जैसे विद्युत और अन्य शक्तियां प्रकृति की अन्ध हुआ करती हैं और इसका व्यवहार ज्ञात तथा अज्ञात रूप से बुद्धि तथा अबुद्धि पूर्वक और चातुरी या मूर्खता से किया जा सकता है। इसमें स्वतः बुद्धि पूर्वक क्रिया नहीं होती जब तक प्रयोक्ता अपने मानस द्वारा इसका प्रेरण न करे। इसे यदि मानस शारीरिक शक्ति के स्थान पर यदि मानव विद्युच्छक्ति कहें तो अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि यह विद्युतच्छक्ति से अधिकतर समता रखती है।

यह मानव शारीरिक शक्ति प्राणशक्ति का एक रूप है। प्राण एक विश्वव्यापी शक्ति है और भिन्न रूपों में सजीव और निर्जीव सब वस्तुओं में पाई जाती है शक्ति के सब रूप इसी प्राण के रूपान्तर हैं। विद्युत् इसी प्राण का रूप है—वैसे ही

आकर्षण शक्ति-वैसे ही मानव शारीरिक शक्ति। यह मनुष्य के सात मूलतत्वों में से एक तत्व है और थोड़ी बहुत सब मानव देहों में पाई जाती है।

मनुष्य श्वास के वायु, भोजन के अन्न और पान के जल से प्राण खींचता है। यदि उसमें प्राण कम हो तो वह निर्बल और बिना जीवट का होता है। जब उसकी आवश्यकताओं के लिये प्राण अलम् रहता है तो वह क्रियात्मक, चमकीला, शक्तिमान और जीवटमय होता है। हमने श्वास द्वारा प्राण ग्रहण और धारण करने की शिक्षा छोटी किताब 'श्वासविज्ञान' में दिया है और भोजन तथा पान द्वारा प्राण के ग्रहण और संचय की शिक्षा "हठयोग" नामक ग्रन्थ में दिया है।

भिन्न २ मनुष्य जिस २ परिमाण में प्राण का ग्रहण और संचय करते हैं उनमें बड़ा भेद होता है। कुछ लोग तो प्राण से भरपूर रहते हैं, और विद्युत् यंत्र की भाँति उसे प्रवाहित किया करते हैं जिससे जो लोग उनके सम्पर्क में आते हैं बढ़ा हुआ स्वास्थ्य बल, जीवन और शक्ति पाते है। दूसरे लोग प्राण से इतना हीन होते हैं कि जब वे दूसरे मनुष्यों के संग में आते हैं तो उनकी प्राण हीनता दूसरों के प्राण को खींचती है जिसका परिणाम यह है कि जिनका प्राण खींचा जाता है वे मुलाकात के बाद अपने को असुखी और निर्बल प्रतीत करते है। कुछ लोग वास्तविक भक्षक होते हैं जो दुसरों ही के प्राण पर अज्ञान रूप से जीवन बिताते हैं और कुछ लोग इस ज्ञान को प्राप्त किये होते हैं कि वे इस प्रकार दुसरों की शक्ति पर जीवन बितावें और वे जान बूझ कर अपने दुर्गुण का प्रयोग

करते हैं। इस शक्ति का यह दुरुपयोग एक प्रकार का टोना है और इसका परिणाम मानसिक दण्ड हुआ करता है। परन्तु जिस मनुष्य ने इस मानव शारीरिक शक्ति के नियमों के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त कर ली है उसे दूसरों के द्वारा अपने प्राण के अपहरण का भय नहीं है।

यह मानव शारीरिक शक्ति अथवा प्राण शक्ति एक बड़ी प्रबल रोग मोचन शक्ति है और किसी न किसी रूप से यह मानसिक रोगमोचन की अधिकांश क्रियाओं में पाई जाती है। यह स्वाभाविक रोगमोचन के प्राचीनतम रूपों में से एक है और मानव जाति में प्रवृत्तिजनित और नैसर्गिक कही जा सकती है। जिस बच्चे को चोट लगती है अथवा जिसको पीड़ा जान पड़ती है वह दौड़ा अपनी माता के पास पहुचता है और माता चोट के स्थान को चूम लेती है अथवा पीड़ा स्थल पर हाथ फेर देती है और कुछ क्षणों में बच्चा अच्छा हो जाता है। जब हम लोग किसी पीड़ित मनुष्य के पास पहुँचते हैं तो हम लोगों में यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि उसके ललाट पर अपना हाथ फेरें या उसके शरीर का स्पर्श करें। हाथ का यह प्रवृत्ति-जनित फेरना रोगी को प्राणशक्ति देना है, और इससे रोगी की तबीयत कुछ हलकी हो जाती है। बच्चे को माता की छाती से लगा कर रखना इसी अभिप्राय की दूसरी प्रवृत्तिजनित क्रिया है। माता की प्राणशक्ति उसके प्रेमभाव से प्रेरित हो कर बच्चे में पहुँचती है और बच्चे की पीड़ा शान्त हो कर उसे शक्ति प्राप्त होती है। यह मानव शारीरिक शक्ति कामना या विचार द्वारा अपने शरीर से उच्छालित की जा सकती है वा हाथ,

शरीरस्पर्श, चुम्बन और श्वास द्वारा या अन्य ऐसी रीति से दूसरे के शरीर में प्रेरित की जा सकती है। हम इस विषय का और अधिक वर्णन चौथे पाठ में योग द्वारा रोगमोचन के विषय में करेंगे।

यह मानव शारीरिक शक्ति क्या है इसका स्पष्ट समझना तब तक असम्भव है जब तक हम गंभीरतर योग शिक्षा में प्रवेश न करें, और यह गंभीरतर शिक्षा अभी नव शिष्यों के उपयुक्त न होगी। मानव शारीरिक शक्ति के समझाने में यह बतलाना पड़ेगा कि प्राण क्या वस्तु है प्राण के समझाने में हमें भूतों के मूल कारण तक जाना होगा और बल की वास्तविक प्रकृति और आदि को ढूँढ़ना होगा, जिस कार्य को करने में वर्तमान पदार्थ विज्ञान विफल हो गया है परन्तु जिसे गंभीर योग शिक्षा समझा सकती है, कम से कम उन लोगों को जो शनैः, शनैः श्रमशील और क्रमशः गति से उसके समझने की कक्षा तक पहुँच गये हैं।

यह बात कही जा सकती है कि जब तब प्राणशक्ति की वास्तविक प्रकृति न समझा दी जाय तब तक इस कथन को शिष्यों से स्वीकार करा लेना कि मानव शारीरिक शक्ति वा प्राणशक्ति अस्तित्व में है अतिशय आशा करना है। इसके उत्तर में हम कहते हैं कि ऐसी बहुत सी बातें हैं जो उनके दृष्ट फल द्वारा प्रमाणित होती हैं, यद्यपि वे वस्तुयें शब्दों में नहीं समझाई जा सकतीं। उदाहरण के लिए विद्युत या चुम्बक शक्ति को लीजिये—हम लोगों को इनका अस्तित्व इनके फलों द्वारा प्रतिदिन प्रमाणित हो रहा है, परन्तु इनकी वास्तविक

प्रकृति के विषय में भौतिक विज्ञान बहुत ही कम बोधगम्य बातें कहता है। वही दशा इस प्राणशक्ति की भी है—इसके फलों को देखना होगा और न कि सब शक्तियों के मूल प्राण की गूढ़ता को हल करने का प्रयत्न करना होगा।

परन्तु हमने लोगों को ऐसा कहते भी सुना है कि विद्युत और चुम्बक शक्ति के फल और प्रगट रूप तो देखने में आते हैं परन्तु मानव शारीरिक शक्ति वा प्राणशक्ति के फल और प्रगट रूप नहीं देखने में आते। इस कथन पर हँसी आती है जब हम स्मरण करते हैं कि पहलवान के बल प्रदर्शन से लेकर पलकों के स्फुरण तक शरीर की प्रत्येक गति इसी प्राणशक्ति का फल और प्रगट रूप है।

भौतिक विज्ञानी इस शक्ति को नाड़ी शक्ति अथवा ऐसा ही अन्य नाम देते हैं, परन्तु यह वही बात है जिसे हम मानव शारीरिक शक्ति वा प्राणशक्ति कहते हैं। जब हम कोई उंगली उठाना चाहते हैं तब हम इच्छा का प्रयत्न लगाते हैं। यदि कामना सचेतन हुई—और यदि कामना अचेतन हुई तो प्रवृत्ति मानस का प्रयत्न लगाते हैं—और प्राणशक्ति की एक मात्रा उस अंगुली की गति पर अधिकार रखनेवाले मांसपेशियों में भेजी जाती है। मांसपेशियाँ संकुचित होती हैं और अंगुली उठ जाती है। यही दशा शरीर की प्रत्येक गति की है, चाहे प्रयत्न की सचेतन वा अचेतन भूमिका हो। प्रत्येक पग जो हम डालते हैं वह इसी प्रक्रिया द्वारा होता है—प्रत्येक शब्द जो हम बोलते हैं इसी रीति से उत्पन्न होता है—प्रत्येक अश्रुबिन्दु इसी नियम का अनुसरण करते हैं। यहां तक कि हृदय का

स्पन्दन भी इसी प्राणशक्ति की क्रिया है जो प्रवृति मानस द्वारा प्रेरित होती है।

जैसे केन्द्रवर्ती कार्यालय से तार समाचार भूमि के प्रत्येक भाग पर भेज दिया जाता है वैसे ही प्राणशक्ति सब नाड़ियों में भेज दी जाती है। नाड़ियां इसके तार हैं और शरीर में इन्हीं तारों द्वारा प्राणधारा बहा करती है। और जैसे थोड़े दिन हुए कि पहले यह ख्याल किया जाता था कि बिना तार के तार समाचार नहीं भेजे जा सकते, वैसे ही भौतिक विज्ञानी अब भी कहा करते हैं कि विना नाड़ियों के नाड़ी बल शरीर के सब अंगों में नहीं पहुँच सकता। और जैसे विज्ञानियों ने अब आविष्कार किया है कि बेतार के तार समाचार भी सम्भव हैं और कार्य करते देखे जाते हैं वैसे ही योगी लोग शताब्दियों से जानते आये हैं कि यह प्राणशक्ति एक मनुष्य से दूसरे में, भुवराकाश द्वारा विना नाड़ी या तार के भेजी जा सकती है।

क्या प्राणशक्ति की स्पष्ट भावना करने में आप को कुछ सहायता मिली या नहीं ?

जैसा हम ऊपर कह आये हैं यह प्राणशक्ति मनुष्य के शरीर में श्वास के वायु, भोजन के अन्न और पान के जल द्वारा जाती है। यह प्रकृत की रसायन शाला में खींची जाती है, नाड़ीजाल की संचय बेटारियों (batteries) में संचित होती है जिनका प्रधान संचयस्थान सौर्य्य केन्द्र है। इन संचय स्थानों से यह प्राणशक्ति मन द्वारा खींची जाकर सहस्रों अभिप्रायों के लिये, जिनके लिये यह अभीष्ट है, भेजी जाती

है। जब हम कहते हैं कि 'मन द्वारा खींची जाकर' तब यह न समझना चाहिये कि यह सचेतन मन के प्रयत्न अथवा इच्छाशक्ति द्वारा खींची जाती है–सच तो यह है कि इसके परिमाण का ५ प्रतिशत भी इस प्रकार सचेतन मन के प्रयत्न से नहीं खींचा जाता, शेष ९५ प्रति शत उस प्रवृत्ति मानस द्वारा खींचा और बर्ता जाता है जो शरीर की क्रियाओं, पाचन, रस ग्रहण और मलत्याजन की क्रियाओं पर शासन करता है–वैसे ही रुधिर संचार और भौतिक शरीर की अनेक क्रियायें प्रवृत्ति मानस के शासन में हैं।

यह भी न समझना चाहिये कि प्राणशक्ति शरीर के किसी अवयव में किसी समय पर अनुपस्थित है अथवा तब तक अनुपस्थित है जब तक वह मन के स्पष्ट प्रयत्न द्वारा न भेजी जाय। सच बात यह है कि शरीर का प्रत्येक भाग सब समयों में थोड़ा बहुत प्राणशक्ति धारण किये रहता है–शक्ति का परिमाण मनुष्य के साधारण जीवट के अनुसार हुआ करता है और यह जीवट शरीरस्थ प्राण की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है।

इस स्थान पर "श्वास विज्ञान" में वर्णित नाड़ी तन्तुजाल का विवरण समझ जाना शिष्य के लिये अत्यन्त लाभदायक होगा। उस किताब में और "हठयोग" में इसका सविस्तार वर्णन दिया गया है इस लिये उस विषय का यहां वर्णन नहीं किया जाता।

जैसे रुधिर धमनियों, शिराओं और बाल सी पतली २ रुधिर नलिकाओं द्वारा शरीर के प्रत्येक अंग और अवयव में पहुंच जाता है और इसके द्वारा शरीर सुन्दर" स्वच्छ लाल

रुधिरयुक्त रहता है, जिससे शरीर के अणु बना और सुधरा करते हैं और पुष्कल सामान उपस्थित रहता है कि उस भक्त सेवक की प्रेरणा से जिसे प्रवृत्ति मानस कहते हैं, शरीर के प्रत्येक भाग में रचना और सुधार का अनन्त कार्य लगातार जारी रहे—वैसे ही यह मानवशारीरिक शक्ति या प्राण शक्ति उस आश्चर्यजनक और जटिल यंत्र द्वारा जिसे नाड़ीजाल कहते हैं जिसमें प्रधान नाड़ी, साधारण नाड़ी; सूक्ष्मनाड़ी, प्राणसंचय स्थान आदि हुआ करते हैं, शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँच जाता है। इस शक्ति बिना जीवन नहीं हो सकता, क्योंकि रुधिरसंचालन का यंत्र भी इसी प्राणशक्ति की प्रेरणा से चलता है।

स्वस्थमानव शरीर सिर से पैर तक इस आश्चर्यमय शक्ति से भरपूर रहता है और यही शक्ति शरीर के यंत्रों को चलायमान रखती है और यह शक्ति केवल भौतिक ही नहीं किन्तु भुवर्भूमिका में भी व्यवहृत होती है जैसा आगे चलकर देखने में आवेगा।

परन्तु इस बात को स्मरण रखना चाहिये कि इस सब भाजन प्रभाजन का प्रेरक प्रवृत्तिमानस है क्योंकि शरीर के प्राणसंचय के स्थानों से यह शक्ति खींच कर शरीर के प्रत्येक अंग और अवयव में भेजा करता है और तत्काल और अचानक की आवश्यकता पर नयी मात्रा खींचता है। यह संचय और वितरण दोनोंपर ध्यान रखता है, यदि ऐसा न करता तो शरीर का दिवाला निकाल देता। यदि मानव शरीर में पुष्कल प्राणशक्ति है तो प्रवृतिमानस उसके वितरण में बड़ी उदारता करता है क्योंकि वह कृपण नहीं है, वह सावधान है,

और ऐसे शरीरवाला मनुष्य प्राण उत्प्रवाहित क्रिया करता है, इसलिये जो दूसरे मनुष्य इसके सम्पर्क में आते हैं उस उत्प्रवाह का अनुभव करते हैं जो नाड़ीजालकी सीमा को लंघन करके शरीर के चारों ओर के भुवराकाश को शक्ति से भर देता है । मनुष्य के शरीर से अनेक प्रकार के तेज प्रवाहिता हुआ करते हैं, उन तेजों में से एक प्राणतेज भी प्रवाहित होता रहता है ।

इस तेज का बहुत से लोग अनुभव कर सकते हैं और वे लोग इसको देख भी सकते हैं जिनमें परोक्ष दर्शन की कुछ शक्ति जग उठी है । सच तो यह है कि अच्छा परोक्ष द्रष्टा मनुष्य के शरीर में नाड़ी जाल द्वारा विचरती हुई प्राण शक्ति को देख सकता है । जब यह शक्ति शरीर में या उसके निकटस्थ रहता है तो इसका रंग हल्का गुलाबी होता है और ज्यों २ यह शरीर से दूर हटती जाती है त्यों २ रंग मिटता जाता है । शरीर से बहुत थोड़ी दूरी पर यह बिजली के स्फुलिंगों के रंग के बादल की बल्कि एक्सरेज नलिका की किरणों की समता धारण करती है । परोक्ष द्रष्टा लोग इसके स्फुलिंग रूप करणों को उस समय देखते हैं जब कोई प्रयोक्ता इसका प्रयोग करके आपने हाथों को झाड़ता है तब ये कण अंगुलियों से झड़ते हुये नजर आते हैं । यह कभी २ उन मनुष्यों द्वारा भी देखा जाता है जो अपने को परोक्ष द्रष्टा नहीं समझते और ऐसे लोगों को यह गरम चूल्हे से निकलती हुई गरम हवा के सदृश बेरंग, भाफ के समान स्पन्दन और कम्पन करती हुई कोई वस्तु दिखाई देती है ।

दृढ़ मनोयोग या शिक्षित विचारशक्तिवाला मनुष्य अपने मस्तिष्क से निकलती हुई विचार लहरों के साथ इस शक्ति की अधिक मात्रा को निस्सारित करता रहता है। सच तो यह है कि सब विचार लहरें इस प्राणशक्ति से भरपूर रहती हैं; परन्तु जो लोग निर्बल मनोयोग और हीन चारित्र के मनुष्य होते हैं वे इतनी कम शक्ति निकालते हैं कि इसकी गणना विकसित और पुष्ट विचार वालों से निस्सृत शक्ति के सम्मुख कुछ भी नहीं है।

भौति ज्ञानी और योगी के बीच इस प्राणशक्ति के परिवर्तन के विषय में बहुत मतभेद है। भौतिक विज्ञानी कहता है कि यद्यपि नाड़ी बल है और शरीर के भीतर उन सब बातों को करता है, जिनका वर्णन योगी लोग करते हैं, परन्तु वह नाड़ी जाल ही की सीमा के अन्तर्गत परिमित है और उस सीमा को पार नहीं कर सकता। इस लिये वह इस प्राणशक्ति के अनेकों गुणों को अस्वीकार करता है और योग के उपदेशों को केवल स्वप्नशील और कल्पनाशील मनुष्यों ही के योग्य समझता है। इसके विपरीत योगी अपने अनुभव द्वारा जानता है कि यह प्राण अथवा नाड़ीबल नाड़ीजाल की सीमा को पार कर सकता है और बार २ किया करता है, और कभी २ उस मनुष्य से बहुत दूर भेजा जा सकता है जिसके शरीर में वह संचित है। इसका प्रमाण कोई भी मनुष्य पा सकता है जो इसका स्वयम् अनुभव करे, परन्तु यह तभी होगा जब वह अपने हृदय से इसका विरोधी प्राक्कल्पनाओं को हटा दे और इन तथ्यों को वैसा ही स्वीकार करने के लिये उद्यत हो जैसा उससे वर्णन किया जाता है।

और आगे बढ़ने के पूर्व हम अपने शिष्यों को एक बार फिर स्मरण दिलाते हैं कि यह मानव शारीरिक शक्ति प्राण का केवल एक रूप है और यह प्राण मनुष्यों द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये इच्छानुसार बनाया नहीं जाता। जब मनुष्य अपने शरीर में प्राण का परिमाण अधिक बढ़ाता है तो वह प्राण को तुरत बना कर नहीं ऐसा करता किन्तु अपने शरीर में प्राण की अधिक मात्रा को प्राण के महत् भंडार से श्वास, भोजन या पान द्वारा खींचता है। इस प्रकार वायु, भोजन और द्रव से खींचे हुए प्राण की मात्रा मानसिक इच्छा या संकल्पशक्ति द्वारा और भी अधिक बढ़ाई जा सकती है जिसका वर्णन अभी किया जायगा। प्राण का परिमाण अस्तित्व में निश्चित है, वह बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता। वह अपरिवर्तनीय है। वह बल है।

पहले पाठ में हम कह आये हैं कि जब कोई विचार बल पूर्वक प्रगट किया जाता है तो वह प्रायः अपने साथ प्राण की अधिक मात्रा वहन करता है जिससे उसको अधिक शक्ति मिलती है और कभी २ आश्चर्यजनक फल उत्पन्न होता है। यह प्राण विचार में वस्तुतः जीवट डाल देता है और उसे प्रायः जीवित शक्ति बना देता है। प्रत्येक विध्यात्मक विचार, चाहे भला या बुरा हो, इस प्राण से थोड़ा बहुत अवश्य भरपूर रहता है। दृढ़ संकल्प वाला मनुष्य जो अचेत रूप से प्रबल विध्यात्मक विचार संचालित करता है (अथवा सचेतन रूप से, यदि वह इस विषय को समझता हो) तो उसीके अनुसार प्राण की भी प्रेरणा करता है। जब मनुष्य प्रबल भावना में

हो तो उस समय का प्रेरित विचार और भी अधिक प्राण से संयुक्त होता है। इस प्रकार प्राण से भरे विचार निशाने पर गोली की भांति जा लगते हैं न कि मामूली निर्बल विचारों की भांति धीरे २ उड़ते रहें। कुछ सभावक्ता लोग इस गुण को प्राप्त किये रहते हैं और अपने शब्दों को इस शक्ति के साथ संचालित करते हैं कि श्रोता गणों पर वह विचार बिना टकराये नहीं रहता। एक प्रबल जोरदार सोचने वाला मनुष्य जिसके विचार अधिक प्राण से भरपूर रहते हैं, कभी २ अपने विचारों में इतना जीवट डाल देता है कि वे विचार कुछ काल तक विचार मूर्ति हो कर जीवित रहते हैं—अर्थात् अपने साथी प्राण के कारण इतने जोरदार हो जाते हैं कि वे प्रायः जीवित शक्ति के समान हो जाते हैं। ये विचार की मूर्तियां जब किसी मनुष्य के मानसिक क्षेत्र में आती हैं तो उतनी ही शक्ति प्रगट करती हैं मानो वह मनुष्य सम्मुख हो कर बातें कर रहा हो। विचार की शक्तियों के विषय में एक बार फिर पढ़ जाइये कि इस प्राण के संयोग से उसकी अधिक प्रबलता का और भी स्पष्ट ज्ञान हो जाय।

मनुष्य की कामनाओं और आशाओं पर खींचने और विचार लहरों के प्रेरित करने दोनों विषयों में अधिकतर अवलम्ब करता अर्थात् यद्यपि प्रत्येक मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षणमें थोड़ा बहुत प्राण खींचा ही करता है और यद्यपि प्राण का यह परिमाण श्वास, भोजन और पान में योग के उपदेशों को वर्तने से और भी अधिक बढ़ सकता है तौभी मनुष्य के विचार, कामना और आशा के द्वारा यह परिमाण

और भी बहुत अधिक बढ़ सकता है। वैसे ही मनुष्य अपनी कामना, या इच्छा के द्वारा उस शक्ति को बहुत अधिक बढ़ा सकता है जिसके साथ विचार प्रेरित किया गया है क्योंकि कामना या इच्छा के द्वारा उस प्राण की मात्रा बहुत बढ़ जाती है जिससे विचार भरा रहता है।

स्पष्ट शब्दों में यह बात है कि यदि मनुष्य आकर्षित होते हुए प्राण की मानसिक कल्पना श्वास लेते, भोजन करते और जल पीते हुए करे तो वह कुछ ऐसे गूढ़ नियमों को संचालित कर देगा जिससे प्राण की अधिक मात्रा आच्छादक भूतों से मुक्त हो जावेगी और परिणाम में वह बहुत शक्ति सम्पन्न हो जावेगा। कुछ लम्बी सांस लेते हुए इस परीक्षा को कीजिये और मन में यह कल्पना कीजिये कि प्रत्येक श्वास के साथ बहुत सा प्राण भीतर खींच रहे हैं तब आप को नई शक्ति का धारा प्रवाह प्रतीत होने लगेगा आप थके हों तो यह अभ्यास परीक्षा ही करने के योग्य है। वैसे ही एक प्याला पानी बहुत धीरे २ पीजिये और मन में यह कल्पना कीजिये कि इस पानी में संचित प्राण की बड़ी मात्रा को खींच रहे हैं तौभी आप को वही परिणाम अनुभव में आवेगा। वैसे ही भोजन करने में यदि आप अपने भोजन को बहुत अच्छी तरह मुंह में कूचेंगे और साथ ही यह मानसिक कल्पना करते रहेंगे कि भोजन के प्राण शक्ति को खींच रहें हैं तो भोजन से प्राप्त शक्ति और पुष्टि की मात्रा बहुत बढ़ जावेगी। ये सब बातें बहुत सहायक हैं। हम आशा करते हैं कि आप इन बातों की परीक्षा करलेंगे और जब आवश्यकता हो तब इन्हें

-वर्तेंगे। इन बातों की सरलता के कारण इनकी महिमा कम मत समझिये।

यही बात उस विचार के सम्बन्ध में काम देती है जो विचार इस कल्पना के साथ प्रेरित किया जाता है कि यह भली भांति प्राण से भरापूरा है। इस कल्पना से वह विचार अधिकतर शक्ति और तीव्रता धारण कर लेता है और इस अभ्यास से उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है। परन्तु सावधान रहिये कि बुरे विचारों को इस प्रकार मत प्रेरित कीजिये।

इस मानव शारीरिक शक्ति के विषय में अनेकों मनोरंजक बातों की अभ्यास द्वारा परीक्षा हो सकती है। यदि आप के कई मित्र इस विषय में जी लगाते हों तो आप इस बात की जांच कीजिये: एक मंडली वृत्ताकार एक दूसरे का हाथ पकड़े बैठे और सब लोग इसी बात पर मनोयोग दें कि प्राण की धारा उस वृत्त में प्रवाहित हो चले। सर्व सम्मति से यह भी निश्चित रहे कि किधर से किधर को चले, क्योंकि एक बायें चाहे और दूसरा दाहिने तो इस सहकारिता का लाभ खो जायगा। अच्छी तरकीब तो यह है कि घड़ी की सूई की भांति की चाल की इच्छा की जाय, अर्थात् किसी मनुष्य को १२ बजे के स्थान पर कल्पना कर लीजिये तब उसी मनुष्य से ठीक उसी तरफ धारा बहती हुई कल्पना कीजिये जिस तरफ को सूई जाती है। यदि मंडली एकरस होगी तो आप को शीघ्र ही बिजली की धार की धीमी गति की धीमी गन-गनाहट अनुभव होने लगेगी। इस अभ्यास से यदि थोड़ा २ किया जाय तो मंडली के सब मनुष्यों की शक्ति बढ़ेगी। परन्तु

हम देर तक इस अवस्था में बैठने की सलाह न देंगे क्योंकि इससे मानसिक घटनायें घट सकती हैं कि जिनका घटना नवशिष्य के उपयोगी न होगा । इस प्रकार की वे विचार और अवोधगत घटनाओं का घटित होना अभीष्ट नहीं है । पहले इन घटनाओं के नियम समझ में आ जाएं तब इनको घटित करने का प्रयत्न किया जाय ।

हमारी किताव "श्वास विज्ञान" इस प्राणशक्ति के प्रयोग की कई रीतियों को संक्षेप में वतलाती है और हम शिष्य को सलाह देते हैं कि इस पाठ को समाप्त करने के पश्चात् उस किताव को फिर अध्ययन करे । हमारी सव कितावें एक दूसरी से घना सम्वन्ध रखती हैं और ज्यों २ एक पढ़ी जाती है दूसरी स्पष्टतर होती जाती है । आवश्यकतावश हमें शिक्षाओं को संक्षिप्त करना पड़ता है और हम शिष्यों से आशा करते हैं कि वे वड़े मनोयोग से इन्हें पढ़ेंगे जिससे कि उन्हें पूरा फल प्राप्त हो ।

वार २ एक ही विषय को दोहराना न पड़े इस लिए हम शिष्यों को "श्वास विज्ञान" का हवाला देते हैं कि वे उस किताव से प्राण संग्रह और प्राण वितरण को सीखें ।

"श्वास विज्ञान" का पन्द्रहवां अध्याय इस विषय की बहुमूल्य शिक्षायें देता है । हम वार २ इन विचारों को शिष्यों के हृदय पर अंकित किया चाहते हैं इसी लिए वार वार इन विषयों को एक दूसरे से मिला कर अध्ययन करने की सलाह देते हैं । ये पाठ सवक है न कि केवल मनोरंजन ही के लिए पठन मात्र । इनका अभीष्ट शिक्षा है न कि केवल शिष्यों का मनोरंजन ।

इस लिए यदि शिष्य को वास्तव में कुछ सीखना है तो हम प्रसन्नता पूर्वक उसे "श्वास विज्ञान" का हवाला देते हैं जिस में वह अभ्यास और मनोयोग के लिये अलम् हितकर सामग्री पावेगा।

हम अगले पाठ "योग द्वारा रोग मोचन" में उसे कुछ काम करने को देंगे और यदि वह चाहे तो कुछ नये अभ्यास भी बतलायेंगे।

जैसा हम पहले कह आए हैं इन पाठों को बार बार मनो योग से पढ़ना चाहिए, एक को दूसरे के साथ मिला कर; क्योंकि एक पाठ दूसरे पर प्रकाश डालता है। ये सब पाठ एक ही बात के अंग हैं—प्रत्येक का अपना स्थान है और प्रत्येक दूसरे से घना सम्बन्ध रखता है।

अपने शिष्यों में से उन लोगों को जो योग शिक्षा के अभीष्ट पूर्ण स्वास्थ्य तक नहीं पहुँचे हैं, जो स्वास्थ्य कि मन के उप- युक्त साधन के लिये आवश्यक है और उन शिष्यों को जो रोग और निर्बल स्वास्थ्य से पीड़ित हैं, हम प्राण की मात्रा बढ़ाने का उपदेश देते हैं कि श्वास, भोजन और पान में "श्वास विज्ञान" द्वारा कहे गये अभ्यासों से प्राण की मात्रा बढ़ावें। प्राण संचय के इस सावधान अभ्यास से प्रत्येक को मनुष्य बड़ा लाभ होगा। शरीर की उपेक्षा मत करो क्योंकि यह जीवित आत्मा का मन्दिर है। इसकी पूरी पुष्टि करो और इसको उपयुक्त औजार बनाओ।

चौथा पाठ ।

योग द्वारा रोग मोचन ।

मनुष्य इतिहास का अध्यायी सब जाति के मनुष्यों की कथा कहानी और इतिहास में इस बात का प्रमाण पावेगा कि कि सब कालों में योग द्वारा रोग मोचन का अभ्यास किसी न किसी रूप में सब जातियों—सब जनताओं—में अनुसरण किया जाता है। योगद्वारा रोगमोचन के ये अनेक रूप भद्दे से भद्दे असभ्य भ्रान्त विश्वास से लेकर आजकल की प्रचलित मानसिक प्रथाओं के परिष्कृत रूप तक अनेक प्रकार के हुआ करते हैं। ये भिन्न २ प्रथायें मजहब के अनेक रूपोंके साथ जुटी हुई है। अफ्रिका की वूडू प्रथा से लेकर हमारे देश के झाड़फूँक और मार्जन में होते हुये संसार के उच्चाति उच्च मजहब में भी यह प्रथा प्रचलित है। इस प्रकार की रोगमोचन क्रिया से जो रोग शान्तिरूप फल प्राप्त होते हैं उनके हेतु दिखलाने में सब प्रकार युक्तियाँ उपस्थित की गई हैं। इस तथ्य के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के विश्वास स्थापित किये गये हैं। याजक, पुरोहित, आचार्य और रोग छुड़ानेवालों ने दैवी शक्तियों का दावा किया है। चूँकि ये लोग रोग शान्ति करते थे इसलिये ये लोग अपने देश में पूजित देवता के खास प्रतिनिधि होने का गर्व करते थे। इस रोगमोचन द्वारा ये पुरोहित अपने मजज़्हब को तो सच्चा और अन्य मज़हबों को मिथ्या

और भ्रान्त दिखलाते थे कि इसी मजहब में तो असलियत है और अन्य मजहब निस्सार है।

मानव प्रकृति सब काल और संसार के सब स्थानों में एक है। अफ्रिका के वृद्ध अभ्यास से लेकर अमेरिका की प्रचलित परिष्कृत प्रथा तक में यही प्रतिद्वंद्व पाया जाता है। प्रकृति की इस महती शक्ति पर केवल एकाधिकार का दावा करने वालों पर शोक होता है। प्रकृत की सुधारक शक्ति वायु और सूर्य की धूप के समान सब के लिये खुली और मुक्त है; और जो मनुष्य इसका उपयोग किया चाहे, कर सकता है। यह किसी एक मजहब या एक दर्शन की सम्पत्ति नहीं है और न इस शक्ति से लाभ उठाने के लिये किसी एक मजहबी विश्वास की आवश्यकता है। परमेश्वर के बच्चे अनेकों रूप, सम्प्रदाय और मजहब से अपना मन बहलाव किया करते हैं। परन्तु वह सब को अपना बच्चा जानता है और उनकी इस धारणा पर मुसकुराता है हमी ईश्वर प्रिय हैं और अन्य लोग इस जगद्व्यापी स्वत्व से वंचित हैं।

हमारे शिष्यों पर यह बात अवश्य प्रगट हो गई होगी कि इस गूढ़ रोगमोचन की अनेक प्रथाओं के अन्तर्गत कोई एक महच्छक्ति अवश्य होगी क्योंकि यद्यपि प्रत्येक अपनी ही युक्ति को सच्ची और अन्य की युक्ति को झूठी ठहराता है परन्तु सभी रोगमोचन करते हैं। कोई महच्छक्ति अवश्य है जिसका सभी प्रयोग करते हैं इसका यदि कोई विवरण है तो वह विवरण ऐसा होना चाहिये जिससे रोगमोचन के अनेकों प्रकार के रूपों में से प्रत्येक का मूलतत्व समझ में आजाय;

क्योंकि अपनी भिन्नता प्रतिपादन करते हुए भी सभी रोग-मोचन में समर्थ होते हैं।

योगशास्त्री लोग शताब्दियों से रोगमोचन के अनेक रूपों को जानते और वर्तते आये हैं और इन लोगों ने सब रूपों के अन्तर्व्यापी मूल तत्त्वों का गभीर और पूर्ण अध्ययन किया है। परन्तु ये लोग कभी भी इस भ्रान्ति में न पड़े कि हमी इस विषय के एकमात्र अधिकारी हैं। सच तो यह है कि इनके अन्वेषणों और परीक्षाओं ने इन पर सिद्ध कर दिया है कि सब रोगमोचक एक प्राकृतिक शक्ति का प्रयोग करते हैं—जो यद्यपि भिन्न भिन्न पथ से प्रयुक्त होती है पर सब मामलों में एक ही शक्ति है—और इसके सम्बन्ध में अभौतिक युक्तियाँ, मजहबी अकीदे, दैवी कृपायें आदि जो कही जाती हैं वे सब वैसे ही इससे असम्बद्ध हैं जैसे वे विद्युच्छक्ति, आकर्षण-शक्ति और चुम्बक शक्ति से असम्बद्ध हैं।

योगी लोग अनुभव करते हैं कि रोगमोचन के सब रूप इस प्राकृतिक महच्छक्ति के प्रयोग करने के भिन्न भिन्न साधन मात्र हैं—कोई रूप किसी एक मामले के अनुकूल होता है और कोई किसी दूसरे के—किसी विशेष मामले के लिए कई साधनों का प्रायः मेल मिलाना पड़ता है।

योगी लोग जानते हैं कि इन सब रोगमोचनों में प्राण-शक्ति ही का प्रयोग किया जाता है, यद्यपि यह प्राण अनेक रीतियों से व्यवहृत होता है जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे। वे बतलाते हैं कि सब प्रकार के गूढ़ रोगमोचन इस प्रकार समझा दिये जा सकते हैं—वस्तुतः वे सब भिन्न भिन्न

तरीकों से रोगमोचन कर देते हैं—और शताब्दियों से करते आये हैं—पर उनका विश्वास है कि एक ही युक्ति सब युक्तियों की अन्तर्व्यापिनी युक्ति है।

वे रोगमोचन के रूपों को तीन साधारण श्रेणियों में बांटते हैं, अर्थात्:—(१) प्राण द्वारा रोगमोचन जिसमें वह भी सम्मिलित है जिसे पाश्चात्य लोग चुम्बक शक्ति आदि द्वारा रोगमोचन कहते हैं; (२) मानसिक रोगमोचन जिसमें अनेकों प्रकार मानसिक और आभ्यन्तरिक रीतियाँ तथा परोक्ष रोगमोचन और मंत्र द्वारा रोगमोचन आदि सम्मिलित हैं; (३) आध्यात्मिक रोगमोचन जो रोगमोचन की विरल लभ्य प्रथा है और केवल उच्च और अध्यात्मसिद्ध योगियों द्वारा हो सकती है। पर इस अध्यात्म रोगमोचन में भी वही प्राणशक्ति प्रयुक्त की जाती है। प्राण ही एक साधन है जिससे रोगमोचन होता है चाहे वह प्राण किसी रीति से और मनुष्य द्वारा प्रयुक्त किया जाय।

गूढ़ रोगमोचन के विचार में हमें आरम्भ में जाना होगा। रोगमोचन के प्रश्न पर विचार करने के पहले हमें स्वस्थ शरीर को देखना होगा।

योगशास्त्र बतलाता है कि परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यता के अनुकूल भौतिक शरीर देता है और उसे ऐसे साधन भी उपस्थित कर देता है जिनसे वह शरीर दुरुस्त बना रहे, और यदि मनुष्य के प्रमाद से वह शरीर अयोग्य हो जाय तो उसके सुधारने के लिये भी परमेश्वर ने साधन दिये हुए हैं। योगी इस मानव शरीर को महत्‌बुद्धि की कारी-

गरी समझते हैं । वे इसकी संगठनि को चलती हुई कल समझते हैं जिसकी भावना और क्रिया महत्तम चातुरी और छोह का द्योतन करती है । वे जानते हैं कि यह शरीर महत् बुद्धि ही के कारण है और वही महद्बुद्धि इस भौतिक शरीर के द्वारा अब भी क्रिया कर रही है और जब तक मनुष्य दैवी नियम की क्रियाओं के अनुसार क्रिया करता है तब तक उसके स्वास्थ्य और बल बने रहते हैं । वे यह भी जानते हैं कि मनुष्य उस दैवी नियम के प्रतिकूल चलता है तो बेसुरा-पन और बीमारी उसके फूल हैं । उनका यह विश्वास है कि यह कल्पना हास्यजनक है कि इस महद्बुद्धि ने इस सुन्दर मानव शरीर को उत्पन्न तो किया पर अब इसे इसके भाग्य पर छोड़ कर दूर हट गई, क्योंकि वे जानते हैं कि वही महद्बुद्धि शरीर की प्रत्येक क्रिया पर अधिष्ठान करती है और उसका कुशलपूर्वक विश्वास किया जा सकता है और न कि उसका भय किया जाय ।

वही महद्बुद्धि जिसके प्रगट रूप को हम "प्रकृति" या "जीवन तत्व" ऐसे ही नामों से पुकारते हैं, लगातार हानि सुधारने, क्षत पुराने, हड्डियां जोड़ने, शरीर में उपचित हानि कर द्रव्यों को बाहर फेंकने और सहस्रों मार्ग से इस यंत्र को ठीक चलायमान रखने के लिये उद्यत रहती है । उनमें से अनेकों बातें जिन्हें हम बीमारी कहते हैं, इसी प्रकृति की क्रियायें उन विषैले पदार्थों को हटाने के लिये हैं जिन्हें हमने अपने शरीर में प्रवेश करने और टिकने का अवसर दिया है ।

मानव शरीर की बनावट और उसकी क्रियाओं का अध्ययन करना बहुत ही लाभदायक होगा। इनके अध्ययन से मनुष्य को इस बात का पूरा निश्चय हो जाता है कि प्रकृति में महद्बुद्धि निस्सन्देह वर्तमान है—वह महत जीवन तत्व को कार्य करता देखता है—वह देखता है कि यह केवल अन्धा इत्तफाक अथवा आकस्मिक घटना नहीं है किन्तु यह शक्तिमती बुद्धि का कार्य है।

तब वह उस बुद्धि का विश्वास करना तथा इस बात को जानना सीखता है कि जो महद्बुद्धि हमें भौतिक अस्तित्व में लायी है वह जीवन में भी निर्वाह करेगी—जिन शक्तियों ने हमें अपने जिम्मे में रक्खा था वेही अब भी रक्खे हैं और सर्वदा हमें अपने जिम्मे रक्खेंगी।

जितना ही हम अपने को उस महत जीवन तत्व के प्रवाह के लिये खुला रक्खेंगे उतना ही हम लाभ उठावेंगे। यदि हम उससे डरेंगे अथवा उसका अविश्वास करेंगे तो हम उसके लिये अपना द्वार बन्द करेंगे और इस लिये अवश्य दुःख भोगेंगे।

शिष्य यह प्रश्न कर सकता है कि इन बातों और गूढ़ रोगमोचन से क्या सम्बन्ध है और यह कह सकता है कि यह तो हठयोग का उपदेश हो रहा है। इस आखिरी कथन में वह सत्य के बहुत समीप है। परन्तु हम इस धारणा से पृथक् नहीं हट सकते कि प्रकृति में वह बात है जो मनुष्य को पूर्ण स्वास्थ्य में रखने को प्रवृत्त रहती है और हमें विश्वास है कि सत्य उपदेश वही है जो मनुष्यों को पहले स्वास्थ्य रहना

बतावे, तब यह बतावे कि प्रकृति के नियमों के अवलंबन हो जाने पर फिर कैसे स्वस्थ्य हो सकते हैं। योगी लोग समझते हैं कि रोगमोचन को प्रधान विषय बनाना तर्क विरुद्ध है। यदि प्रधान विषय बनाना ही है तो स्वास्थ्य को प्रधान विषय बनाना चाहिये और रोगमोचन को केवल गौण समझना चाहिये।

"हठयोग" में हमने पूर्ण स्वास्थ्य के योगकथित तत्वों का वर्णन किया है। जहां यह सिद्धान्त सिखलाया गया है कि स्वास्थ्य ही मनुष्य की साधारण दशा है और रोग अधिकांश मूर्खता तथा जीवन और चिन्तन के स्वाभविक नियमों के उल्लंघन के कारण होता है। हमने वहां बतलाया है कि रोगमोचन शक्ति प्रत्येक मनुष्य में वर्तमान है और सचेतन तथा अचेतन रूप से कार्य में लाई जा सकती है। व्यक्ति के अन्तर्गत इसी आन्तरिक शक्ति को केवल संचालित करने से (जो कभी २ दूसरों की सहायता से होता है) और शरीर को अपनी अन्तस्थ सुधारक शक्तियों के लिये खोल देने से होता है।

सब रोगमोचन उसीके द्वारा होता है जिसे हम व्यक्ति में जीवन बल कहते हैं। इस जीवन बल का क्रियात्मक तत्व विश्वव्यापी बल का वह रूप है जो प्राण कहा जाता है। एक ही बात को बार २ न दोहराना पड़े इस लिये हम अपने शिष्यों को नाड़ी तन्तुजाल तथा उसके द्वारा प्राण के प्रवाह को समझने के लिये "श्वास विज्ञान" के सातवें पाठ का फिर अध्ययन करने की सलाह देते हैं। इन विषयों पर जो

कुछ हमने लिखा है उसे फिर पढ़ जाइये, तब आप अधिक स्पष्टता से समझ जायेंगे कि गूढ़ रोगमोचन के भिन्न रूपों के विषय में आगे क्या कहा जाता है।

कल्पना कीजिये कि किसी मनुष्य ने शुद्ध जीवन और चिन्तन के नियम को भंग किया है और उसका स्वास्थ्य नीचे गिर गया है। उसने भिन्न २ प्रकार की भौतिक औषधियों की भी परीक्षा कर ली है और अब वह योग द्वारा अर्थात् गूढ़ रोगमोचन का इच्छुक है। उसके सम्मुख इस प्रकार रोग-मोचन के अनेक रूप उपस्थित होते हैं। हम आप को बतला-वेंगे कि कैसे ये भिन्न २ रूप कार्य करते हैं। इस छोटे पाठ में हम सविस्तर ज्ञान और रीतियाँ नहीं दे सकते क्योंकि एक २ प्रथा के वर्णन में एक २ ग्रन्थ की आवश्यकता होगी, परन्तु हम अनेकों रूपों की साधारण भावना दे देने की आशा करते हैं।

मानव शारीरिक शक्ति (चुम्बकशक्ति) द्वारा रोगमोचन।

यह प्राण द्वारा रोग चिकित्सा का एक रूप है जिस में रोगी ही या अन्य प्राण चिकित्सक रुग्णस्थान पर अधिक प्राण-मात्रा प्रेरित करता है। अन्य सब प्रकार की चिकित्सा में प्राण चिकित्सा सहगामिनी हुआ करती है यद्यपि चिकित्सक इसके कार्य को सर्वदा नहीं जानता रहता है। जिसको शक्ति चिकित्सा Magnetic healing कहते हैं। उसमें चिकित्सक अपना हाथ रोगी मनुष्य के शरीर पर फेरता है और इच्छा-शक्ति के प्रयत्न से अपने ही भीतर प्राण की प्रबल मात्रा उत्पन्न करता है जिसे वह रोगी को अर्पण कर देता है। यह प्राण वैसा ही कार्य करता है मानो यह रोगी के शरीर ही से प्रेरित किया हुआ है और शरीर के रुग्णभाग प्रबल और शक्ति मान बनाने में प्रवृत्त होता है कि शरीर स्वाभाविक रीति से कार्य करने लगे। इस चिकित्सा में हाथ प्रायः शरीर पर फेरे जाते हैं, वास्तविक स्पर्श का प्रयोग प्रायः किया जाता है। इस चिकित्सा की साधारण शिक्षा हमने "श्वास विज्ञान" में दी है। हम पहले पाठों में प्राण के विषय में इतना कह आये हैं कि चिकित्सा के अन्तर्गत तत्व को समझना शिष्य को सुलभ हो जाना चाहिये जिससे अब और समझाने की आवश्यकता न शेष रह गई हो।

मानसिक चिकित्सा ।

मानसिक चिकित्सा का बड़ा क्षेत्र है और इसके अन्तर्गत अनेक रूप आते हैं। स्वतः चिकित्सा का एक रूप है जिसमें कथनों अर्थात् स्ववचनों (मंत्रों) का जप रोगी ही द्वारा किया जाता है जिससे मानसिक स्थिति प्रसन्न और उद्गत हो जाती है जिसका असर शरीर पर पड़ता है और शरीर स्वाभाविक रीति से कार्य करने लगता है। हम यहाँ पर यह भी कह दिया चाहते हैं कि इस और ऐसी ही अन्य चिकित्साओं का मुख्य लाभ इस बात में है कि यह रोगी को प्रतिकूल विचारों को त्याग देने के लिये विवश करती है, जिन प्रतिकूल विचारों ने प्रकृति को अपने कार्य करने से रोक रक्खा था; और कोई विशेष गुण इन कथनों, स्ववचनों (मंत्रों) में नहीं है। हम दैवी जीवन तत्व को अपने भीतर स्वतंत्रतापूर्वक नहीं कार्य करने देते थे और उसे प्रतिकूल स्वबचनों द्वारा रोके हुए थे। जब हम मानसिक स्थिति को बदल देते हैं तो हम ऐसी बाधा डालना त्याग देते हैं तब प्रकृति शीघ्र अपना शुभ अस्तित्व प्रगट कर देती है, सुदृढ़ स्ववचन शरीर को उत्तेजित कर देता है और प्रकृति मानस को अपना कार्य करने के लिये आंकुस दे देती है।

जो मानसिक चिकित्सा "कथन" कही जाती है उसमें भी यही तत्व काम करता है। चिकित्सक के विध्यात्मक "कथन" से रोगी का मानस प्रतिकूल स्वबचनों से छुटकारा

पा जाता है और प्रवृत्ति मानस की बाधा हट जाती है और प्रकृति शीघ्र अपना शुभ कार्य करने लगती है और प्राण की अलम् मात्रा रुग्ण भाग में पहुँचने लगती है और शीघ्र ही स्वाभाविक दशा स्थापित हो जाती है। कथनात्मक चिकित्सा में चिकित्सक प्रायः, यद्यपि अचेतन रूप से, रोगी के पास अनेक प्राण की मात्रा प्रेरित करता है जो अंगों को कार्य करने के लिये उत्तेजित करती है और जो रोगी के मन के यत्नों को स्वाभाविक प्राणदशा लाने में आसान कर देती है।

जो साधारणतया "मानसिक चिकित्सा" जानी जाती है उसमें प्रायः "कथन" की बड़ी मात्रा प्रयुक्त होती है, यद्यपि चिकित्सक इसका अभिज्ञ नहीं भी हो सकता। चिकित्सक की मानसिक स्थिति इंगित, आकार, शब्दों, ध्वनियों और रहनि द्वारा रोगी के मन पर अंकित हो जाती है और रोगी का मन उन कथनों को ग्रहण करके लाभ उठा लेता है। परंतु इसके अतिरिक्त चिकित्सक रोगी के मन पर ऊपर लाने वाले शक्तिदायक और दृढ़ बनाने वाले विचार की प्रबल धारा छोड़ा करता है जिसको रोगी उतना ही अधिक भीतर ही भीतर ग्रहण करता रहता है जितनी उत्सुकता ग्रहण करने की वह प्रगट करता है। दो मानस का एक उद्देश से मिल जाना बहुत बड़ी हुई प्रेरणा शक्ति उत्पन्न करता है और इसके अलावे रोगी का मन प्रतिकूल ख्यालों से पृथक् हट जाने के कारण प्राण की अधिक मात्रा खींची और शरीर में वितरित की जाती है। मानसिक चिकित्सा का सर्वोत्तम रूप रोगी के मन और शरीर दोनों को लाभ पहुँचाना है।

वह चिकित्सा जिसे "परोक्ष मानसिक चिकित्सा" कहते हैं, उसी रीति से और उसी पथ पर कार्य करती है जैसे उपरि कथित मानसिक चिकित्सा काम करती है—चिकित्सक और रोगी के बीच की दूरी रोगापनायक विचार के सम्मुख कोई बाधा नहीं डाल सकती। इन दोनों दशाओं में चिकित्सक एक प्रबल विचार रूप उत्पन्न करता है, जो प्राण से पूर्ण भरा होता है जो प्रायः रोगी के ऊपर तत्काल असर पहुंचाता है; अंग उत्तेजित और शक्तिमान हो जाते हैं। अक्सर इस रीति से तत्काल रोगशान्ति उत्पन्न कर दी गई है। बहुत थोड़े ही चिकित्सक इस प्रकार के विचार रूप को प्रेरित करने के लिये भलीभांति समर्थ हैं। बहुत ही शक्तिमान मानसिक चिकित्सक प्राण से भरपूर विचार को प्रेरित करने में समर्थ हो सकता है कि रुग्ण अंग इतनी सुधारक शक्ति से भर जाय कि तत्काल रुग्ण और रद्दी पदार्थों को शरीर से निकालना शुरू कर दे और रुधिर से उन आवश्यक पदार्थों को खींचने लगे जो शरीर के फिर लगाने और सुधारने के लिये जरूरी है। ऐसी दशा में जब शरीर एक बार स्वाभाविक क्रिया प्रारम्भ कर देता है तो फिर बिना बाहरी सहायता के अपना काम किया ही करता है।

सब प्रकार की मानसिक चिकित्सायें उपरिवर्णित शीर्षकों के अन्तर्गत आजाती हैं। स्मरण रखिये कि मुख्य बात यह है कि रोगी के मन को समुचित मानसिक स्थिति में रखा जाय, प्रतिकूल स्वतः वचनों के सब रूप हटा दिये जायं जिससे प्रकृति को अवकाश मिले कि अपना उचित कार्य बिना किसी बाधा के करे। इस फल के प्राप्त करने की प्रक्रिया में रोगी को

(उपरिवर्णित रीति से) रुग्ण भाग में प्रबल विचार की प्रेरणा द्वारा तथा रुग्ण अंग को उत्तेजित और मन के चिकित्सा कार्य को सरल बनाने के लिये चिकित्सक द्वारा प्राण की मात्रा भेजी जाकर सहायता पहुंचाई जा सकती है।

आध्यात्मिक चिकित्सा।

एक और प्रकार की चिकित्सा है, जो बहुत ही विरल पायी जाती है, जिसमें बहुत उच्च आध्यात्मिक विकसित मनुष्य अपने आध्यात्मिक तेज या प्रभाव को रोगी मनुष्य पर इस प्रकार डाल देता है कि उसका सारा शरीर उससे थोड़े काल के लिये भर कर पूर्ण हो जाता है और सब अस्वाभाविकता दूर हो जाती है; क्योंकि आत्मा स्वयम् परिपूर्ण होने से जो कुछ उसके सम्पर्क में आता है उसे परिवर्तित कर देती है। यह सची आध्यात्मिक चिकित्सा इतनी विरल है कि बहुत ही कम लोगों को इसके देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसका दावा अनेक ऐसे मनुष्य करते हैं जो दूसरी रीतियों से बहुत अच्छा चिकित्सा कार्य कर रहे हैं, परन्तु ऐसे मनुष्यों में से बहुत से लोग स्वतः भ्रान्त हैं और इस बात की तनिक भी भावना नहीं रखते कि सची आध्यात्मिक चिकित्सा क्या वस्तु है। आध्यात्मिक चिकित्सा में यह विशेषता है कि रोगी तत्काल और पूरा चंगा हो जाता है, पूर्ण स्वाभाविक शारीरिक दशा आजाती है, रोगी शरीर से बलवान, पूर्ण स्वास्थ्य युक्त, सुदृढ़, शक्तिमान बालक ऐसी दशा में परिवर्तित हो जाता है जिसमें कोई त्रुटि, पीड़ा, अथवा रोग के लक्षण नहीं रह जाते। बहुत थोड़े मनुष्यों को इस संसार में प्रत्येक काल में यह शक्ति मिलती है; परन्तु, इसको अच्छे मानसिक कारणों से बहुत ही विरल प्रगट किया जाता है। और इस बात पर ध्यान रखिये कि

सच्ची आध्यात्मिक चिकित्सा का कभी भी प्रयोग धन के लाभ के लिये नहीं किया जाता। यह विना धन और विना मूल्य के दी जाती है। सच्ची आध्यात्मिक चिकित्सा कभी भी भौतिकता से कलंकित नहीं की जाती—कभी नहीं। चिकित्सक को मानसिक तथा प्राण चिकित्सा में धन लेना उचित है क्योंकि इस कार्य में वह अपना समय लगाता है और श्रमजीवी को उसका वेतन अवश्य मिलना चाहिये और ऐसे धन लेने की आलोचना करने की इच्छा भी नहीं है—वह मनुष्य वैसे ही अपनी सेवा को बेंचता है जैसे हम इन पाठों को बेंचते हैं और वह मनुष्य अपना पुरस्कार पाने का वैसा ही अधिकारी है जैसे हम अपना पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं। परन्तु वह मनुष्य जो आध्यात्मिक चिकित्सा का प्रसाद दे सकता है, कभी भी ऐसी स्थिति में नहीं रह सकता कि जिसमें उसको अपनी सेवा के वदले धन लेने की आवश्यकता हो। उसे देवदूत भोजन देते हैं और अपनी आध्यात्मिक शक्तियों को बेंचने की उसे आवश्यकता ही नहीं है। वह मर जायगा पर अपने दैवी अधिकार को कलंकित न करेगा। इस विषय में जब हम आध्यात्मिक चिकित्सा कहते हैं तो हमारा अभिप्राय आत्मा के प्रसाद से है न-कि मानसिक चिकित्सा से—जिसे भी कोई २ आध्यात्मिक नाम दिया करते हैं। यदि आप सच्ची आध्यात्मिक चिकित्सा का उदाहरण चाहते हैं तो बाइबिल में हजरत ईसामसीह की कीर्तियों को पढ़िये जहां उन्होंने आत्मा के कार्यों को दिखलाया है। वही आदर्श होना चाहिये जैसा कि वस्तुतः है।

चिकित्सा शिक्षा।

अब आगे इस गूढ़ चिकित्सा की कतिपय शिक्षायें दी जाती हैं जिनका अभ्यास शिष्य गण अपने इच्छानुसार कर सकते हैं। ये शिक्षायें केवल उदाहरण के स्वरूप दी जाती हैं और इन्हीं को गूढ़ चिकित्सा के अनेक रूपों की पूरी शिक्षा न समझ लेना चाहिये।

हम पहले प्राण चिकित्सा के कुछ उदाहरण नीचे देते हैं। इसी चिकत्सा को यदि आप चाहें तो शारीरिक शक्ति द्वारा चिकित्सा कह सकते हैं।

(१) रोगी को एक कुर्सी पर बैठे जाने दीजिये और आप उसके सम्मुख खड़े रहिये। आप के हाथ आपके बगलों में ढीले लटकते रहें और तब उन्हें ढीले ही आगे पीछे झुलाने लगिये और तब तक झुलाते जाइये जब तक आप की अंगुलियों के छोरों पर धीमी गुदगुदी का अनुभव न प्रतीत होने लगे। तब हाथों को रोगी के सिर की ऊँचाई तक ले जाइये और हथेलियों को रोगी के मुँह की ओर रक्खे हुए, अंगुलियां फैलाये, हाथों को इस प्रकार सिर से पैर की ओर ले जाइये मानो आप अंगुलियों की छोरों से रोगी पर शक्ति बरसा रहे हैं। तब एक फुट पीछे हट आइये और हाथों को फिर उसके सिर की उंचाई तक उठाइये, परन्तु ख्याल रहे की हाथों को ऊपर ले जाते हुए हथेलियाँ एक दूसरी के ओर मुँह किये रहें, क्योंकि यदि आप उसी स्थिति में ऊपर ले जायंगे जिस स्थिति में

नीचे लाये थे तो जिस प्राण को आप दिये रहेंगे उसे खींच लेंगे। अब इसी को बार २ कीजिये। नीचे ले जाते हुए मांसपेशियों को कड़ी मत कीजिये परन्तु भुजाओं और हाथों को ढीला और शिथिल रखिये। आप शरीर के रुग्णभाग की भी इसी प्रकार चिकित्सा कर सकते हैं, पर अन्त में सारे शरीर को शक्ति से भर दीजिये। रुग्णभाग की चिकित्सा करने के अन्त में आप के लिये यह बेहतर होगा की अंगुलियों को बगलों से बाहर ऐसे झाड़ दीजिये मानो आप अंगुलियों से लगे हुए पानी के बून्दों को झाड़ रहे हैं। ऐसा न करने से सम्भव है कि आप रोगी की दशा को आकृष्ट कर लें। यह चिकित्सा रोगी को बहुत शक्तिदायिनी होती है और यदि बार २ इसका अभ्यास किया जाय तो रोगी को इससे बहुत लाभ होगा।

जीर्ण और दीर्घ काल के रोगी में बगलों की ओर पास देकर पहले रोग को ढीला कर लिया जा सकता है। इसकी रीति यह है कि अपने हाथों को एकत्र रखते हुए रोगी के सन्मुख खड़े हूजिये, हथलियां एक दूसरी को स्पर्श किये रहें और तब भुजाओं को बगलों की ओर कई बार झुलाइये। इस चिकित्सा के अन्त में नीचे की ओर पास दीजिये जिससे रुधिर-संचार समगति से होने लगे।

(२) "श्वासविज्ञान" के चौदहवें अध्याय में हमने कई बहुमूल्य शिक्षायें इस रूप की चिकित्सा की दी हैं। यदि हमारे शिष्य इस विषय की इस शाखा में मनोयोग देते हों तो हम उन्हें उन शिक्षाओं के अध्ययन और अभ्यास की सलाह देते हैं।

(३) सिर की पीड़ा हटाने के लिये रोगी को अपने सम्मुख

बैठाइये और आप उसकी कुर्सी के पीछे खड़े हूजिये और अपने हाथों की अंगुलियां नीचे किये और फैलाये हुए उसके सिर के ऊपर दोहरे वृत्त में घुमाइये पर उसके सिर का स्पर्श न हो। चन्द क्षणों में आप अपनी अंगुलियों से शक्ति प्रवाहित होते प्रतीत करेंगे और रोगी की पीड़ा शान्त हो जावेगी।

(४) शरीर की पीड़ा हटाने की दूसरी अच्छी रीति यह है कि रोगी के सम्मुख खड़े हो जाइये और रुग्णभाग के सम्मुख अपनी हथेली ले जाइये, शरीर से कई इंचों का फासिला रहे। कुछ क्षणों तक हथेली को स्थिर रखने के पश्चात् उसे धीमी वृत्ताकार गति दीजिये और रुग्णभाग पर घुमाते रहिये। यह चिकित्सा बहुत उत्तेजक है और स्वाभाविक दशा लाने में प्रवृत्त हो जाती है।

(५) शरीर से कुछ इंचों की दूरी पर अपनी तर्जनी अंगुली को रुग्णभाग की ओर दिखाइये और इसी प्रकार दिखलाते हुए हाथ को ऐसे घुमाइये मानो आप अंगुली के छोर को वर्मा की भांति घुमा कर छेद कर रहे हो। इससे रुग्णभाग में रुधिर संचार प्रारम्भ हो जायगा और भली स्थिति आवेगी।

(६) हाथों को रोगी के सिर पर पुटपुरियों के ऊपर कुछ क्षण तक रखने से अच्छा फल होता है और यह इस प्रकार की प्रचलित चिकित्सा है।

(७) रोगी के शरीर को वस्त्र के ऊपर ही ठोकने में ऐसा गुण है कि रुधिर संचार उत्तेजित और समगतिवाला हो जाता है और इससे बाधा हटती है।

(८) मर्दन तथा ऐसी ही अन्य चिकित्सा का गुण आंणही के

कारण होता है क्योंकि चिकित्सक से बहकर प्राण मर्दन और सहलाने में रोगी के शरीर में प्रवेश करता है। यदि मर्दन और सहलाने के साथ २ चिकित्सक रोगी के शरीर में प्राण भरने का चिन्तन करता रहे तो और भी अधिक प्राण का प्रवाह प्राप्त होता है। यदि इस अभ्यास के साथ २ तालयुक्त श्वास भी ली जाय, जैसा "श्वास विज्ञान" में कहा गया है तो और भी बहुत अच्छा फल हो।

(९) मनुष्यों की अनेक जातियों के लोगों द्वारा रुग्ण-भाग पर फूंक लगाने की प्रथा है और यह प्रथा भी रुग्णभाग में प्राण भेजने की अच्छी रीति है। यह अक्सर इस प्रकार किया जाता है कि कोई रूई के वस्त्र का टुकड़ा रोगी के मांस और चिकित्सक के बीच में रख दिया जाता है। इससे श्वास के द्वारा कपड़ा गरम हो जाता है और अन्य फूलों के अतिरिक्त उष्णता भी उत्तेजित हो जाती है।

(१०) शक्तिपूर्ण जल भी शक्ति चिकित्सकों द्वारा व्यव-हृत होता है, और इस प्रकार से भी बड़े अच्छे फल होने की सूचनायें मिलती हैं। जल को शक्तिपूर्ण करने की सरलतम विधि यह है कि बायें हाथ से जल के ग्लास की पेंदी पकड़ी जाय और दहने हाथ की अंगुलियां बटोरकर ग्लास के पानी पर इस प्रकार धीरे २ झाड़ी जाँय मानों आप अपनी अंगु-लियों के छोरों पर लगे हुए पानी के बूंदों को ग्लास में झाड़ रहे हैं। आप इसके गुण को अपने दहने हाथ से नीचे की ओर पास देकर और भी अधिक बढ़ा सकते हैं और पानी में प्राण भेज सकते हैं। पानी में प्राण भेजने में तालयुक्त श्वास

और भी अधिक सहायता पहुँचावेगा। इस प्रकार प्राण पूरित जल रोगी मनुष्य के लिये बहुत उत्तेजक होता है। इसका गुण और भी अधिक बढ़ जाता है जब रोगी श्रद्धापूर्वक यह चिन्तन करता हुआ इसे चूस २ कर पिये कि हम पानी में से प्राण खींच कर अपने शरीर म फैला रहे हैं और शरीर को शक्ति दे रहे हैं।

अब आगे हम मानसिक चिकित्साओं में से कुछ प्रकार की चिकित्सा की शिक्षा देते हैं:—

(१) स्वत: वचन वह मंत्र है जिससे अपने आप को वह शारीरिक दशा सुझाई जाती है जिस दशा का लाना अभीष्ट होता है। स्वत: वचन के मंत्र (सुनने योग्य या चुप २) इस प्रकार उच्चारित होने चाहिये मानों एक मनुष्य दूसरे से गंभीरता और मनोयोग पूर्वक कह रहा हो, साथ ही साथ मन में शब्दों द्वारा कथित दशा का चित्र भी खींचते जाना चाहिये। उदाहरण के लिये इस प्रकार कि:—मेरा आमाशय प्रबल, प्रबल, प्रबल है—भोजन के पचाने में समर्थ है—भोजन से रस खींचने में समर्थ है—उसको उस पुष्टि के देने में समर्थ है जिससे हमारा स्वास्थ्य और बल है। मेरा पाचन बहुत अच्छा, अच्छा, अच्छा है और मैं अपने भोजन का भोग, पाचन और रसाकर्षण कर रहा हूं और उसे सुन्दर स्वच्छ रुधिर में परिवर्तन कर रहा हूं, जो रुधिर मेरे शरीर के सब भागों में स्वास्थ्य और शक्ति पहुँचा रहा है, शरीर को बना रहा और मुझे बलवान कर रहा है।" ऐसे ही स्वत: वचन के मंत्र शरीर के दूसरे अवयवों के लिये भी प्रयुक्त हो कर

वैसा ही अच्छा फल उत्पन्न कर सकते हैं। इस चिकित्सा में ध्यान और मन मंत्रवर्णित अंगों में जाता है जिससे प्राण की अधिक मात्रा वहां पहुँचने लगती है और चित्रित दशा आ जाती है। स्वतःवचन मंत्रों के तत्व मे प्रवेश कर जाइये और श्रद्धासहित उन पर पूर्ण मनोयोग दीजिये, और जहां तक सम्भव हो अभीष्ट स्वास्थ्य युक्त दशा का मानसिक चित्र खींचे रहिये। अपने को वैसाही देखिये जैसा आप हुआ चाहते हैं। इस चिकित्सा के साथ आप उपरिवर्णित प्राण चिकित्सा भी कर सकते हैं।

(२) जो चिकित्सावचन के मंत्र दूसरों को दिये जाते हैं वे भी इसी तत्व पर काम करते हैं जिस तत्व पर उपरि वर्णित स्वतः वचन के मंत्र काम करते हैं। फरक इतना है कि चिकित्सक को रोगी के हृदय में अभीष्ट दशा को अंकित कर देना चाहिये न कि केवल रोगी ही अपनी अभीष्ट दशा को आप अपने हृदय पर अंकित करे। बहुत ही अच्छा फल तब प्राप्त हो जब चिकित्सक और रोगी दोनों मानसिक चित्र में योग दें, और जब रोगी चिकित्सक के वचन मंत्रों का अपने मन में अनुसरण करें और चिकित्सक के कहे वचनों का मानसिक चित्र रोगी बनाता जाय। चिकित्सक वही वचन कहता है जिसे वह चारितार्थ किया चाहता है और रोगी उस वचन को अपने प्रवृत्ति मानस में निमग्न करता जाता है, जहां ये वचन गृहीत होते हैं और पश्चात शारीरिक फल में प्रगट होते हैं। सर्वोत्तम वचन चिकित्सक जीवट वाले मनुष्य होते हैं, जो प्रबल विचारों को प्राण से भर कर रोगी के

शरीर में अपने वचन मन्त्रों के साथ २ भेजते हैं। मानसिक चिकित्सा के सब रूपों में कई रीतियां संमिश्रित हुआ करती हैं जैसा कि शिष्य को स्वयम् मालूम होगा यदि वह चिकित्साओं के विश्लेषण करने का कष्ट उठावेगा। प्रवृत्ति मानस अकसर इस बुरी आदत को पकड़ लेता है कि शरीर की आज्ञा का अनुवर्ती हो जाता है। इसका कारण मनुष्य का जीवन की स्वाभाविक रीति से विचलित होना है जिससे प्रवृत्तिमानस गलत आदतें पकड़ लेता है। वचन और स्वतः वचन मंत्र प्रवृत्तिमानस को स्वाभाविक क्रिया पर ला देते हैं और शरीर आसानी से अपनी पहली सुदशा को प्राप्त हो जाता है। बहुत से मामलों में वचन चिकित्सा के विषय में केवल इसी बात की आवश्यकता है कि रोगी के मन से भय, चिन्ता और खेदजनक विचार हटा दिये जाँय, जो शरीर की समुचित सुदशा में बाधा पहुँचाते हैं और जो प्राण की समुचित मात्रा के शरीर में वितरित होने में रोक डालते हैं। इन दुष्ट विचारों का दूर कर देना वैसा ही है जैसे घड़ी के पुर्जे में से गर्द के उस कण का दूर कर देना है, जिसने घड़ी के पुर्जे की गति में खड़बड़ मचा कर घड़ी की चाल को अनुचित बना दिया है। भय, चिन्ता और विद्वेष अपने साथी वृत्तियों के साथ मिल कर शरीर में इतना उत्पात मचाते हैं जितना और अन्य सब कारण मिल कर भी नहीं मचा सकते।

(३) जो ठीक मानसिक चिकित्सा कही जाती है उसमें रोगी शरीर से शिथिल हो कर बैठता है और अपने मन को

ग्रहीता बना लेता है। चिकित्सक तब रोगी के पास शक्तिदायक और उन्नायक प्रकार के विचारों को भेजता है जो रोगी के मन से टकरा कर उसकी निषेधात्मक दशाओं को हटाते तथा उसे अपनी स्वाभाविक स्थिति तथा दशा से युक्त बनाते हैं; जिसका यह परिणाम होता है कि ज्यों ही रोगी का मन अपनी वास्तविक स्थिति को प्राप्त करता है त्योंही वह अपने को प्रतिपादन करता है और शरीर की सुधारक शक्तियों को संचालित करता है और शरीर के सब भागों में प्राण की अधिक मात्रा प्रेरित करता है और स्वास्थ्य तथा शक्ति प्राप्त करने की पहली सब क्रियाओं को प्रारम्भ कर देता है। मानसिक चिकित्सा का मूल तत्व रोगी के मन को समुचित दशा में करना है। तब स्वभाव ही से लाभदायक स्वाभाविक शारीरिक दशायें हो जाती हैं परन्तु सर्वोत्तम मानसिक चिकित्सक इससे भी अधिक करते हैं—वे प्रायः (अचेतन रूपसे) प्राण से भरे विध्यात्मक विचार रोगी के रुग्ण भाग पर सीधा भेजते हैं और रोगी के शरीर में वास्तविक शारीरिक परिवर्तन कर देते हैं; यह बात स्वयम् रोगी की मानसिक क्रिया के अलावे होती है। इस प्रकार रोगी की चिकित्सा करने में इस बात पर पूरा ध्यान रखना चाहिये कि रोगी के शरीर में शारीरिक सुव्यवस्था पुनः स्थापित हो रही है और स्वास्थ्य उसकी स्वाभाविक दशा है और सब निषेधात्मक विचार रोगी के मानस से दूर हो रहे हैं। उसे शरीर और मन सब प्रकार से स्वस्थ चित्रित कीजिये। उसे सब अभीष्ट अवस्थाओं से युक्त चित्रित कीजिये। तब अपने मन को एकाग्र करके उसके

शरीर या रुग्ण अंग में एक प्रबल विचार धारा प्रेरित कीजिये जिसका अभिप्राय अभीष्ट शारीरिक परिवर्तन लाना है कि अस्वाभाविक दशायें हट कर स्वाभाविक दशायें और क्रियायें पुनः स्थापित हो जावें । इस बात का मानसिक चित्र खींच लीजिये कि विचार पूरा-और अच्छी तरह भरपूर है और तब उस विचार को इच्छा शक्ति द्वारा रुग्णभाग में भेज दीजिये। इस अन्तिम परिणाम की प्राप्ति के लिये बहुत अभ्यास की आवश्यकता है पर कुछ लोगों को यह बात बिना बहुत परि-श्रम के ही आजाती है ।

(४) दूर चिकित्सा या परोक्षचिकित्सा भी ठीक इसी प्रकार की जाती है। हम इस प्रकार की चिकित्सा की कुछ शिक्षा "श्वास विज्ञान" के चौदहवें अध्याय में दे आये हैं जो उपरिवर्णित बातों के साथ इस विषय का प्रारम्भिक ज्ञान देवेंगी। कुछ चिकित्सक रोगी को अपने सन्मुख बैठा चित्रित करते हैं और तब चिकित्सा प्रारम्भ करते हैं, मानो रोगी पास ही उपस्थित है। अन्य चिकित्सक अपनी विचार धारा को निकलते चित्रित करते हैं मानों वह इनके मन से निकल, आकाश को पार करते हुए रोगी के रुग्ण भाग में पहुंचती है। अन्य लोग केवल शान्त ध्यान दशा में बैठ जाते हैं और एकाग्र मनोयोग द्वारा केवल रोगी का ध्यान बिना मध्यवर्ती दूरी के विचार के करते हैं। अन्य लोग रोगी की रूमाल या और कोई चीज ले लेते हैं कि जिससे लगाव की दशा और भी पूर्ण हो जाय। इन रीतियों में से कोई या सभी अच्छी

हैं; केवल चिकित्सक की प्रवृत्ति एक को अधिक पसन्द कर लेती है परन्तु एक ही तत्व सबके अन्तर्गत है।

इन सब रीतियों में थोड़ा अभ्यास करने से शिष्य को चिकित्सा क्रिया में विश्वास और सरलता की उत्पत्ति होगी। आगे चलकर तो वह अचेतन रूप से भी चिकित्साशक्ति प्रवाहित करता रहेगा। यदि अधिक चिकित्सा कार्य किया जाय और चिकित्सक का मन इस कार्य में लगे तो वह शीघ्र ही ऐसा हो जाता है कि वह जब किसी रोगी के सम्पर्क में आता है तो आपसे आप और बिना इच्छा किये ही चिकित्सा करने लगता है। चिकित्सक को स्वयम् भी सावधान रहना चाहिये कि आप अपने प्राण को न बहुत कम कर दे और इस प्रकार अपने ही स्वास्थ्य की हानि करे। उसे हमारी दी हुई रीतियों का अध्ययन करना चाहिये कि कैसे अपने आप को प्राण से भरें और कैसे अपने को जीवट के अनुचित बहाव से रक्षित रक्खें और उसे शनैः २ ऐसे विषयों में गति करना चाहिये। इस बात को स्मरण रखना चाहिये कि बलात् वृद्धि अभीष्ट नहीं है।

यह पाठ इस अभिप्राय से नहीं लिखा गया है कि हम अपने शिष्यों को चिकित्सक बनने की सलाह दें। इस प्रश्न में उनको अपने ही निर्णय और प्रवृत्ति का व्यवहार करना होगा। हमने इस पाठ को चिकित्सा के विषय में लगा दिया है क्योंकि यह शाखा भी उसी विषय की है जिसका वर्णन करना हमारा उद्देश है; और चिकित्सा के इन अनेक रूपों के अन्तर्गत व्यापक तत्व का जान लेना बहुत ही अच्छी बात

है। यदि वे इस चिकित्सा के किसी रूप को देखें अथवा सुनें तो उसका विश्लेषण करें और उसके ऊपर की आडम्बर युक्तियों को हटादें तब वे उस चिकित्सक की युक्ति को स्वीकार किये ही बिना उसकी क्रिया को समझने में समर्थ हो सकेंगे। स्मरण रखिये कि सभी सम्प्रदायवाले एक ही तत्व का प्रयोग करके चिकित्सा करते हैं परन्तु फल को अपनी २ विरुद्ध युक्तियों और सम्प्रदायों के महत्व पर आरोपित करते हैं।

अपने लिये हम तो "हठ योग" के सिद्धान्तों के अनुयायी हैं जो यह उपदेश करता है कि शुद्ध जीवन और शुद्ध चिन्तन से अपने स्वास्थ्य को बनाये रक्खो। हम सब प्रकार की चिकित्सा को मनुष्य के प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करने ही के कारण आवश्यक जानते हैं। परन्तु जब तक मनुष्य समुचित जीवन और चिन्तन नहीं करता तब तक किसी न किसी प्रकार की चिकित्सा आवश्यक है और इसी लिये चिकित्सा के अध्ययन का महत्व है। उच्च योगी लोग स्वास्थ्यरक्षा को चिकित्सा की अपेक्षा अधिक प्रधान समझते हैं। उनका विश्वास है कि एक छटांक रोग निवारण एक सेर रोग चिकित्सा के बराबर है। पर जब तक हम आपने साथी मानव जाति को लाभ पहुंचा सकें तब तक यह अच्छा ही है कि हम गूढ़ चिकित्सा के विषय का कुछ ज्ञान रक्खें। यह प्रकृति की शक्तियों में से एक शक्ति है और इसे व्यवहार करना हमें जानना चाहिये।

पांचवां पाठ ।

मानसिक प्रभाव ।

वैज्ञानिक अन्वेषकों, मानव जाति के इतिहासाध्यायियों को घवड़ादेने वाली बातों में से एक यह बात है कि सब जाति, सब देश और सब काल के मनुष्यों में मानसिक प्रभाव के अधिकार और अभ्यास विषयक कथा, कहानियों और विरदावलियों का वर्णन पाया जाता है। अन्वेषकों ने इस बात को बहुत सरल पाया कि इन कथाओं के आदिम रूप को तो यह कहकर त्याग दें कि ये कथायें अशिक्षित और अविकसित जनता की व्यर्थ की भ्रान्ति के फल हैं। परन्तु जब वे इतिहास के पत्रों को उलटते हैं तो उसमें पाते हैं कि "वह व्यर्थ की भ्रान्ति" अब भी अपनी प्रारम्भिक शक्ति धारण किये है और उसके रूप संख्या और भेद दिन पर दिन बढ़ते ही जाते हैं। अफ्रीका के घृणित वूडू अभ्यास से इंगलेन्ड के टोना की बवा से होते हुये अब वर्तमान पश्चिमी संसार तक, जहां सब लोग "मानसिकता" के पीछे पागल हो रहे हैं और दैनिक पत्र शक्ति प्रभाव, मूर्छावाद (समाधिका कहां पता ?) मानसिक शक्ति आदि की उत्तेजक कहानियों से भरे रहते हैं, इस मानसिक प्रभाव की महिमा है। सब काल की किताबें मानसिक प्रभाव की कहानियों से भरी हुई हैं। बाइबिल में इसके भले या बुरे प्रभाव के अनेकों उदाहरण हैं।

वर्तमान समय में मन की शक्ति के आश्चर्य जनक उदाहरणों की ओर प्रायः ध्यान आकर्षित किया जाता है और यह बात प्रायः सुनने में आती है कि अमुक मनुष्य शक्तिशाली है वा नहीं है। इस विषय पर बहुत व्यर्थ बातें लिखी गई हैं और इसके सम्बन्ध में अनाप शनाप युक्तियां प्रचलित की गई हैं। परन्तु इसकी सचाई इसकी अनाप शनाप युक्तियों की अपेक्षा कहीं आश्चर्यजनक है। मानसिक प्रभाव के सम्बन्ध में लोगों के भावों और कुभावों के अन्तगर्त तथ्य का एक दृढ़ आधार है जिसका अधिकांश भाग उन लोगों को, भी अज्ञात है जो दुनियां में इसका इतना धूम मचा रहे हैं।

हमको इस बात के बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि पूर्वीय लोग शताब्दियों पहले से इस गूढ़ता के सब ज्ञात रूपों को जानते और व्यवहार करते आये हैं और वस्तुतः उन गूढ़ तत्वों को धारण किये हैं जिनको पाने के लिये पश्चिमी अन्वेषक इतने परिश्रम से यत्न कर रहे हैं। इस ज्ञान के छिलके कहीं बाहर होगये हैं जिन्हें पश्चिमी लेखकों ने लपक कर लूट लिया है और उसे आश्चर्य जनक आविष्कारों और युक्तियों का आधार बनाया है।

इस गूढ़ ज्ञान का अधिकांश भाग बहुत काल आगे तक छिपाही पड़ा रहेगा क्योंकि मानव जाति की अवस्था अभी अविकसित है और इस गूढ़ ज्ञान के उपयुक्त अभी जनता नहीं हुई है। इस गूढ़ विद्या के थोड़े अंश को भी साधारण जनता में इस समय फैलाना अति ही भयानक होगा और जनता पर बड़ी भारी विपत्ति लावेगा। यह बात इन उपदेशों

के किसी दोष के कारण नहीं है किन्तु साधारण स्त्री पुरुष की स्वार्थपरता ऐसी है कि वे इस ज्ञान को तुरत अपने स्वार्थ लाभ के लिये व्यवहार करने लगेंगे जिससे उनके साथी मनुष्यों को हानि और क्षति पहुंचेगी। यदि सारी मानव जाति इस विषय को जान जाय इतनी मानसिक और आत्मिक उन्नति करे कि इन शिक्षाओं को ग्रहण और बोधगत कर ले और इस प्रकार अपने भाई बहनों के स्वार्थपर प्रयत्नों से अपनी रक्षा कर सके—तब उन स्वार्थी लोगों को कोई लाभ न होगा। क्योंकि जैसा सब गूढ़ ज्ञानी जानते है, कि कोई जादू, टोना या पुरश्चरण उस पुरुष या स्त्री पर नहीं लग सकता जो प्रकृति में अपने असली स्थान को जानता या जानती है—जिसे उन स्वार्थी प्रयोक्ताओं के प्रयोगों को जिन्हों न आत्मिक विकास प्राप्त किये ही बिना इस ज्ञानके कुछ अंश को पा लिया है, रोकने की शक्ति है। परन्तु आज कल का साधारण मनुष्य नहीं जानता—और न मानेगा—कि मनुष्य में कौन २ सी शक्तियां हैं और इसलिये वह अपनी रक्षा उन लोगों से करने में असमर्थ है जिन लोगों ने इस ज्ञान के टुकड़े को पाकर इसे स्वार्थपर अभिप्रायों से प्रयुक्त कर रहे हैं।

मानसिक शक्ति के अनुचित व्यवहार को गूढ़ ज्ञानी लोग वाममार्ग पुरश्चरण, टोना, जादू आदि करके जानते आये हैं। यह मध्यम काल की भ्रान्तियों की अवशिष्ट नहीं किन्तु असली चीज़ है और आज भी बहुत कुछ अभ्यास किया जाता है। जो लोग इस प्रकार इसका अभ्यास कर रहे हैं वे अपने ही दुःखों के बीज बो रहे हैं, और मानसिक शक्ति का

प्रत्येक अंश जो नीच और स्वार्थपर अभिप्रायों के लिये व्यवहार किया जायगा वह निस्सन्देह उलटेगा और प्रयोक्ता पर टकरावेगा; पर तो भी ये लोग दूसरों पर इस लिये प्रभाव डालते हैं कि भौतिक लाभ या सुख उठावें और साधारण लोग इन लोगों द्वारा छले जा रहे हैं, यद्यपि वे इस भावना पर हँसते हैं—इसे दिल्लगी समझते हैं—और उन लोगों को स्वप्न-दर्शी और निर्वलमन के मनुष्य समझते हैं जो सच्ची बात की शिक्षा देते हैं।

सौभाग्य से वे लोग, जो मानसिक शक्तियों को इस प्रकार कलंकित करते हैं, इस विषय को बहुत ही कम जानते और केवल सरल रूपों ही का व्यवहार कर सकते हैं; परन्तु जब कभी वे ऐसे मनुष्यों के सम्पर्क में आते हैं जो इस विषय से नितान्त अनभिज्ञ हैं, तो वे अपने हुनर से थोड़ा बहुत कामयाब हो जाते हैं। बहुत से लोगों को इत्तफाकिया जान पड़ता है कि वे अपनी इच्छा के अनुसार दूसरों पर प्रभाव डाल सकते हैं, और अपनी शक्ति का मूल न जान कर, वे प्राय: सबसे वैसाही व्यवहार करते हैं जैसा अपनी शारीरिक शक्ति या मानसिक शक्ति का व्यवहार करते हैं। ऐसे मनुष्य क्रमश: ऐसा ज्ञान अकसर (सुदृढ़ गूढ़ नियमों के अनुसार) प्राप्त कर लेते हैं कि जिससे इस विषय को और भी भली भांति समझ जाते हैं और अपनी गलती को देख लेते हैं। अन्य लोग इस गूढ़ शिक्षा के एक अंश को धारण करके दूसरों पर इसकी परीक्षा करने और इसका फल देखने लगते हैं और इस प्रकार जादू टोना के पथ पर चले जाते हैं यद्यपि वे नहीं

समझते कि वे क्या कर रहे हैं। इन लोगों को भी किसी भांति सूचना मिल जाती है और अपनी गलतियों को सुधारने का अवसर दिया जाता है। अन्य लोग उस खतरे को समझते रहते हैं जिसमें वे प्रवेश कर रहे हैं परन्तु इच्छापूर्वक उसे स्वीकार करते हैं क्योंकि ये लोग अपनी शक्ति की नई भावना में मुग्ध और अन्धे हो जाते हैं।

इन लोगों में से किसी को भी अपने स्वार्थपर कार्य को बहुत दिन तक करने का अवकाश नहीं दिया जाता क्योंकि कुछ प्रभुतायें ऐसा कार्य करती रहती हैं कि इनके प्रयत्नों का रोक होता है, और थोड़ी भलाई, बहुत बड़ी स्वार्थी मानसिक क्रिया को रोक सकती है—यह प्राचीन गूढ़ तत्व है!

परन्तु इस प्रारम्भिक जादू के टुकड़े के बाहर, जिसके विषय में हम सावधानी रखने के विषय में बहुत कुछ कह आये हैं, बहुत से मनुष्य ऐसी शक्तियों से युक्त होते हैं जो अपने साथी पुरुष और स्त्रियों में शक्ति बन जाते हैं और इनका प्रभाव प्रतिदिन के जीवन में वैसा ही दिखलाई देता है जैसा बलवान मनुष्य का प्रभाव निर्बलों के गरोह में दिखाई पड़ता है। अपने मित्रों या परिचितों के दल में क्षण भर भी देखिये तो जान पड़ेगा उनमें से किसी २ का प्रभाव अन्यों की अपेक्षा अधिकतर है। कुछ मनुष्यों को लोग नेता और गुरु समझते हैं और अन्य लोग अनुयायी ही रह जाते हैं। ये प्रबल विध्यात्मक मनुष्य युद्ध, व्यवसाय, वकालत, गिरजा की वेदी, चिकित्सा और वस्तुतः जीवन के सभी पथों और मानव उद्योग की सभी शाखाओं में अगुआ रहते हैं। हम

ऐसी बात को देखा करते हैं और कहा करते हैं कि यह मनुष्य अधिक तेजमान है और वह काम तेजवान है। परन्तु इस "तेजवान" से हमारा अभिप्राय क्या है ? इस बात को बतलाने के लिये अनेकों युक्तियां दी गई हैं और बहुत सी हैं और रीतियां इस तेज के जगाने के लिये बताई गई हैं। हाल में बहुत से गुरु उठ खड़े हुए हैं जो इस गूढ़ बात के आविष्कार करने का दावा करते हैं और सब आगन्तुकों को नियत दक्षिणा पर उपदेश देना चाहते हैं, और नाना प्रकार के उत्तेजक इश्तिहार दिये जाते हैं तथा स्वार्थपूर्ति की आशा दी जाती है कि लोग उनके पास आवें और धन देकर उनकी शिक्षा सीखें। अधिकांश दशाओं में इन गुरुओं के पास वस्तुतः कोई भी बात सिखाने की नहीं है; कहीं २ इन लोगों ने इस विषय का इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया है कि जिससे इतना शिक्षा दे सकें कि जिससे किसी कि इतनी मानसिक शक्ति जग जाय कि अनभिज्ञ और निर्बल मनुष्यों पर थोड़ा प्रभाव जमा ले। परन्तु सौभग्यवश ऐसे शिष्यों को इतना आत्म-विश्वास नहीं होता कि इन क्षीण शिक्षाओं को अभ्यास में लावें। परन्तु बहुत थोड़े लोगों को इस अभ्यास में लानें के लिये इतना आत्मा विश्वास हो जाता है कि वे इसका प्रयोग करते हैं और उन शक्तियों को जो उच्च भाव से व्यवहार किये अभिप्रेत है, ऐसा दुर्व्यवहार करते हैं कि बड़ी हानि हो जाया करती है। ज्यों ज्यों इस गूढ़ तत्व के अधिक २ ज्ञान को मानव जाति प्राप्त करेगी त्यों त्यों ये बुराइयां दूर होती जावेंगी। इस बीच में वे लोग जो वस्तुतः इस विषय को

जानते हैं वे अपने यथासामर्थ्य इस विषय में लोगों को शिक्षित बना रहे हैं कि लोग मानसिक रीति से अपनी रक्षा करें और उच्च शक्तियों का प्रयोग नीच स्वार्थपूर्ति के लिये न करें।

इन जादूगरों की क्रियाओं पर सच्चे आध्यात्मिक विकाश वाले मनुष्य हँसते हैं कि इनके प्रयत्न उनके ऊपर तनिक भी अपना हानिकारक असर नहीं पहुँचा सकते। ऐसे लोग उस उच्च भूमिका में हैं जहां इन स्वार्थी जादूगरों के प्रयत्न नहीं पहुँच सकते। इस आत्मरक्षा के विषय में आगे चल कर हमें कहना है पर अभी तो हम मानसिक प्रभाव के अनेक रूपों की साधारण भावना अपने शिष्यों को बतलाया चाहते हैं।

पहले तो इस बात को स्पष्ट समझ रखना चाहिये कि इस पाठ में वहां तक इस गूढ़ज्ञान के खोलने का यत्न न किया जायगा जिससे किसी इत्तफाकिया पाठक के हाथ ऐसा अस्त्र लग जाय जिसे वह अपने स्वार्थी अभिप्राय में व्यवहार कर सके। यह पाठ पाठकों को अपनी रक्षा के लिये है— नाकि जादूगरी का ज्ञान फैलाने के लिये चाहे वह कितनाही अल्प क्यों न हो। यहां हम फिर पाठकों को सावधान किये देते हैं कि जो कुछ हम इस विषय के कुप्रयोग के सम्बन्ध में कहते हैं वह बहुत ही सत्य है कि यदि पाठक उस विपत्ति के छोटे अंश को भी समझ जाय, जो इसके कुप्रयोग से आपड़ती है तो वे इस विषय को उतना ही शीघ्र त्याग दें जितना शीघ्र मनुष्य उस विषैले सांप को त्याग देता है जो हाथ की

गर्मी पाकर जीवन में चौकन्ना हो रहा हो। गूढ़ शक्तियां समुचित प्रयोग और मानव जाति की रक्षा के लिये हैं न कि दुर्व्यवहार और कुप्रयोग के लिये। जो मनुष्य इन सावधानियों पर ध्यान न देगा उसका व्यवहार उसी प्रकार विपत्ति दायक होगा जैसे अनजान आदमी का बिजली के तार के साथ खेलना विपत्तिदायक हुआ करता है।

यदि पश्चिमा लेखक इस बात को अस्वीकार करते हैं पर सब सच्चे गूढ़ मनो विज्ञानी जानते हैं कि मानसिक प्रभाव के सब रूप जो "शक्ति तेज" "आवेश" "मानसिक मूर्छा" और "वचन मंत्र" आदि कहे जाते हैं एक ही बात के रूपान्तर हैं। वह एक बात क्या है, यह उन लोगों की कल्पना में सरलता से आ सकती है जिन लोगों ने पहले पाठों को अच्छी तरह समझ लिया है। यह व्यक्ति के मन की "शक्ति" है जो उस रीति से संचालित होता है जिसका वर्णन पहले पाठों में हो चुका है। हमारा विश्वास है कि शिष्य उन बातों से परिचित है जिन्हें हमने "प्रवृत्तिमानस", "विचार की शक्ति", "इरानुभूति", "विचार रूप" आदि के विषय में तथा प्राण की शक्तिसत्ता के सम्बन्ध में कहा। उन बातों को स्मरण रखने से इस पाठ को शिष्य बिना उन बातों को फिर दुहराये ही समझ सकता है।

मानसिक प्रभाव—इससे हमारा अभिप्राय इसके सब रूपों से है—इसका क्या अर्थ है ? यह कैसे बना है ? यह कैसे कार्य में लगाया जाता है ? इसका असर क्या होता है ? आइये इन प्रश्नों का उत्तर देने का यत्न करें।

हमें पहले प्रवृत्तिमानस से प्रारम्भ करना चाहिये जो मनुष्य के सात तत्वों में से एक तत्व है। यह प्रवृत्तिमानस - मनन क्रिया की एक भूमिका है जो मनुष्य और नीच जन्तुओं दोनों को प्राप्त है पर नीच जन्तुओं को यह नीच कोटि की मिली है। विकास के सोपान में मनन का यह पहला रूप है। इसकी नीचतम श्रेणी नितान्त अचेतन पथ पर प्रगट होती है। इसका प्रारम्भ खनिज जीवन में देखा जाता है जहां यह कल में बनाता देखा जाता है। नीच कोटि के पौधों के जीवन में यह निर्बल रूप से प्रगट होता है और खनिज जीवन से कदाचित ही एक अंश ऊंचा है। तब सरल और क्रमशः उन्नतिशील श्रेणियों द्वारा यह विकास सोपान पर पौधों के जीवन में स्पष्टतर और उच्चतर होता चला जाता है। अन्त में उच्चतर कोटि के पौधों में यह चेतना का स्थूल रूप दिखाने लगता है। नीच जन्तुओं में यह प्रवृत्ति मानस भिन्न२ श्रेणियों में देखा जाता है। नीचतम पशु जीवन के पौधे सदृश चेतना से लेकर उच्चतम पशुओं की मानव चेतना तक यह पशुओं में पाया जाता है। नीचतम कोटि के मनुष्यों में यह उच्च कोटि के पशुओं से थोड़ा ही उन्नत रहता होगा। और ज्यों २ हम सोपान पर ऊपर चढ़ते जाते हैं त्यों २ इसे पांचवे तत्व बुद्धि से प्रतिबिम्बित, रंजित और प्रभावित पाते हैं। अन्त में हम उच्चतम कोटि के मानव रूप तक पहुंचते हैं जहां बुद्धि शासनकारिणी है जो अपनी समुचित पदवी का प्रतिपादन करती है और नीचे के तत्वों पर भलाई के लिये प्रभाव डालती है और वैसी गलतियां नहीं करती जैसा अल्प विक-

सित मनुष्य करता है कि प्रवृत्तिमानस में हानिकर स्वतः सूचना छोड़ देता है और अपनी वास्तविक हानि करता है।

प्रवृत्तिमानस के इस विचार में हमें इस के उस आश्चर्य-मय कार्य को छोड़ जाना होगा जिसे वह स्थूल शरीर की क्रियाओं के निरीक्षण में तथा और रूपों से करता है, और हमें वहां ही तक परिमित रहना होगा जहां तक यह मानसिक प्रभाव के सम्बन्ध में कार्य करता है। यह बड़ा ही प्रधान कार्य है क्योंकि प्रवृत्तिमानस के बिना मानसिक प्रभाव की क्रिया ही नहीं हो सकती; क्योंकि क्रिया का आधार ही न रह जायगा जिसपर क्रिया हो सके। प्रवृत्ति मानस वह औजार है जो मानसिक प्रभाव द्वारा प्रेरित होता है। हम लोग अकसर कहते हैं कि अमुक मनुष्य की बुद्धि पर प्रभाव पड़ा; पर यह कथन गलत है; क्योंकि उस मनुष्य की बुद्धि के रहते हुये भी उस मनुष्य पर प्रभाव पड़ा न कि उसकी बुद्धि द्वारा-प्रवृत्ति मानस पर प्रभाव इस दृढ़ता से अंकित हो जाता है कि वह बुद्धि के प्रतिवादों की उपेक्षा करके भाग जाता है, जैसा कि बहुत से मनुष्य पीछे स्मरण करते हैं और पछताते हैं। बहुत से ऐसे मनुष्य होते हैं, जो अपने ही कथनानुसार जानते तो बहुत कुछ रहते हैं पर करते कुछ और ही हैं।

हम पहले "वचन मंत्र" से आरम्भ करेंगे और वस्तुतः मानसिक प्रभाव के सभी रूपों का, चाहे वे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष हों, यही मूलाधार है। 'वचनमंत्र' से हमारा अभिप्राय दूसरों के विचारों और क्रियाओं पर विध्यात्मक आदेश, अथवा अभीष्ट-विचारों के सूक्ष्म प्रवेशन अथवा इन

दोनों के मेल अथवा इन दोनों के मध्यवर्ती किसी बात द्वारा प्रभाव डालना और शासन करना है। प्रत्यक्ष वचन प्रतिदिन के जीवन में साधारणतः बर्ता जाता है। सच तो यह है कि हम लोग सदा चेतनपूर्वक या अचेतन रूप से वचन दे और ले रहे हैं, और कोई मनुष्य इस देने लेने से कदाचित ही बच सकता है जब तक वह दूसरे लोगों का संग करता है, या उनके शब्दों को सुनता तथा उनके लेखों को पढ़ता है। परन्तु ये प्रातिदिन के वचन अपेक्षातः अप्रधान हैं; और इनमें हुनरमन्द वचनप्रयोक्ता के सचेतन और इच्छित वचन की सी शक्ति नहीं होती। आइये देखें कि कैसे और क्यों ये वचन ग्रहण किये और तदनुसार बर्ते जाते हैं।

जैसा हम पहले कह आये हैं जीवन के प्रारम्भिक रूप में प्रवृत्तिमानस अकेला ही कार्य करता रहा, बुद्धि का उस पर कुछ भी प्रभाव न था, क्योंकि बुद्धि तब तक जगी और विकसित ही नहीं थी। यह प्रवृत्तिमानस पौधों के प्रवृत्ति-मानस की भांति नितान्त अचेतन था। ज्यों २ विकास के सोपान पर उत्थान हुआ त्यों २ पशु धीरे २ थोड़ा २ सचेतन होने लगा और वस्तुओं से अभिज्ञ होने लगा और उन पर प्रारम्भिक तर्क की भांति कुछ करने लगा। अपने शत्रुओं से अपनी रक्षा के लिये पशु को उस स्थूल चेतना से शासित होना पड़ा, जिसे विकसना ने प्रारम्भ कर दिया था और जो प्रवृत्तिमानस में और उसके द्वारा प्रगट होने लगा। कुछ जन्तुओंने अपनी क़िस्म के और जन्तुओं से अधिक उन्नति किया

और स्वभावतः अपना तथा अपनी शक्ति का प्रतिपादन करने लगे—वे अपने को अपने साथियों के लिये चिन्तन करते हुए पाये गये। अब ये वैसा माने जाने लगे कि भय की अवस्था में इनका मुँह जोहा जाय या उस दशा से इनका मुँह जोहा जाय जब चारा दुर्लभ हो गया हो; और इनका नेतृत्व स्वीकृत हुआ और उसका अनुसरण किया जाने लगा। झुँडों में नेता उत्पन्न हो गये, केवल पाशव ही बल के कारण नहीं (जैसा कि अकसर पुस्तकों में लिखा गया है) किन्तु उनकी उच्चतर मस्तिष्क शक्ति के कारण जिसे चातुरी कह सकते हैं, चतुर जन्तु झट भय को पहचान जाता है और उससे बचने का साधन ग्रहण करलेता है—भोजन पाने के नये पथों को झट पहचान जाता है और शत्रु तथा शिकारी को पहचान कर उससे बचने का उपाय ढूंढ़ लेता है। जो मनुष्य पलुये जानवरों के बीच रहा है, या जिसने गरोह में रहने वाले जंगली जानवरों के रहनि सहनि का अध्ययन किया है वह हमारे कथन को भली भांति समझ गया होगा। थोड़े से तो अगुआ होते हैं और बहुत से अनुसरण करते हैं।

ज्यों २ विकास होता गया और मनुष्य विकसित हुआ त्यों २ वही बात प्रगट हुई—अगुआ लोग प्रधान हो गये और उनका अनुसरण किया जाने लगा। मानव इतिहास के प्रत्येक काल में अब तक यही बात चली आती है। थोड़े अगुआ होते हैं और बहुत से अनुसरण करते हैं। मनुष्य आज्ञाकारी और गतानुगतिक जन्तु है। अधिकांश मनुष्य भेड़ की भांति हैं। उन्हें घंटी वाली भेड़ दे दीजिये और वे

प्रसन्नतापूर्वक घनघन सुनते उसके पीछे २ चलेंगे।

परन्तु इस बात को गांठ बांध लीजिये—यह बहुत ही मुख्य बात है—कि वे अधिक बुद्धि शिक्षा या पुस्तकज्ञान ही वाले मनुष्य नहीं हैं जो सर्वदा अगुआ और नेता हुआ करते हैं—इसके विपरीत ऐसे मनुष्यों में से अधिकांश प्रायः नेताओं के पक्के अनुयायी हुआ करते हैं। जो मनुष्य नयन या अगुआ पन करता है वह वह मनुष्य है जो अपने भीतर उस बात का अनुभव करता है जिसे शक्ति चेतना कहते हैं जो सर्वगत बल और शक्ति के असली मूल की अभिज्ञता का अनुभव करते हैं। सम्भव है कि यह अभिज्ञता बुद्धि द्वारा न पहचानी जाय, न समझ में आसके, परन्तु वह व्यक्ति किसी न किसी प्रकार अनुभव करता है कि हम बल और शक्ति धारण किये हुए हैं जिसे हम वर्त सकते हैं। और यदि वह साधारण ही मनुष्य हुआ तो इस शक्ति का श्रेय अपने ऊपर रखता है और उस शक्ति को बर्तने लग जाता है। वह "अहम्" शब्द की असलियत का अनुभव करता है। वह अपने को एक व्यक्ति—एक असली वस्तु—एक सत्ता-समझता है और वह स्वभावतः अपना प्रतिपादन करने लगता है। ये लोग अपनी शक्ति के मूल को नहीं समझते; यह उनके लिये केवल अहम्भावना का मामिला है और वे स्वभाव ही से अपनी शक्ति का व्यवहार करते हुए हैं। वे दूसरों पर प्रभाव तो डालते हैं पर यह नहीं समझते कि कैसे? और प्रायः आश्चर्य करते हैं कि यह क्यों और कैसे होता है। यह कैसे होता है? आइये, हम बतलाते हैं।

उन मनुष्यों को देखिये जिन पर प्रभाव पड़ता है। उनकी किस मानसिक शक्ति पर असर पहुँचता है ? इसमें सन्देह नहीं कि प्रवृत्ति मानस पर अब क्यों इन्हीं के प्रवृत्तिमानस पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा जितना अन्यों के मानस पर नहीं पड़ा ? यही विचारने की बात है। अब इस विषय पर ध्यान दीजिये।

प्रारम्भिक अवस्था और विकाश की दशा में प्रवृत्ति मानस इस प्रकार अभिभूत नहीं होता था क्योंकि उस पर प्रभाव डालने वाली कोई वस्तु ही नहीं थी। परन्तु ज्यों २ मनुष्य विकसता गया, जो मनुष्य अपनी व्यक्तित्व की उदय होती भावना और वास्तविक शक्ति के अभिज्ञ हुए अपने को प्रतिपादन करने लगे और उन्हीं का तथा अन्यों का प्रवृत्ति मानस अभिभूत होने लगा, वह मनुष्य जिसकी अपनी व्यक्तित्व चेतना—जिसकी "अहम्भाव" की अभिज्ञता—अधिक विकसित है, उस मनुष्य के प्रवृत्तिमानस पर प्रभाव डालता है जिसकी चेतना ऐसी नहीं विकसित है। अल्प चेतन मनुष्य का प्रवृत्तिमानस प्रवल अहम के वचन मंत्रों को ग्रहण करता और तदनुसार वर्तता है और उसके विचार की लहरों को अपने ऊपर टकराने देता है और उन्हें अपनाता है।

एक बार फिर स्मरण कर लीजिये कि यह केवल बुद्धि, शिक्षा और विद्या से सम्पन्न ही मनुष्य नहीं है जिसे ऐसी चेतना होती है, यद्यपि यह बात अलबत्ता है कि जितनी ही अधिक मनुष्य की बुद्धि सम्पन्नता होगी उतना ही अधिक वह अभिज्ञ अहम् की शक्ति के क्षेत्र को धारण कर सकता है। अशिक्षित

मनुष्य भी इस शक्ति को वैसे ही धारण किये पाये गये हैं जैसे उच्चशिक्षित लोग। और यद्यपि अशिक्षितों की अल्पशिक्षा उन्हें उस हद तक इस शक्ति का व्यवहार करने से रोकती है जहां तक उनके शिक्षित भाई इसका व्यवहार कर सकते हैं, तौभी वे अपनी श्रेणी के सब के ऊपर प्रभाव डालते हैं और उनके ऊपर भी प्रभाव डालते हैं जो इनकी अपेक्षा अधिक शिक्षित हैं। यह शिक्षा और तर्क का मामला नहीं है—यह चेतनता का मामला है। जिन के पास यह है अपने भीतर "अहम्" का अनुभव करते हैं, और यद्यपि इससे अनुचित प्रकार का अहंकार हो जाता है—गर्व और घमंड होता है—तौभी इस चेतना का थोड़ा भी रखने वाला मनुष्य अवश्य दूसरों पर प्रभाव डालता है और अपना मार्ग बलपूर्वक संसार में बना लेता है। चेतना के इस रूप को संसार "आत्म विश्वास" नाम देता है। यदि आप क्षणभर भी सोचें और अपने चारों और देखें तो आप इसे तत्काल पहचान जायंगे। इसमें सन्देह नहीं कि इस चेतना की अनेक श्रेणियाँ हैं, और यदि अन्य बातें समान हों तो जिस मनुष्य में जितनी अधिक यह चेतना है वह उतना ही अधिक दूसरों पर प्रभाव डाल सकता है। यह चेतना विकसाई और बढ़ाई जा सकती है। यह अध्यात्मिक सिद्धि और विकास वाले मनुष्य की चेतना से जिसकी शक्तियां मानसभूमिका पर बहुत बढ़ी हुई हैं अल्प होती है।

अच्छा, अब अपने प्रधान विषय पर चलिये कि कैसे प्रवृत्तिमानस अभिभूत होता है। वह मनुष्य जिसकी अहंचेतना खासी विकसी हुई है अपने ही प्रवृत्तिमानस को वचनमंत्र

देता है और यह प्रवृत्तिमानस अपने मालिक को एकमात्र आज्ञा और शासन का मूल समझता है। परन्तु वह मनुष्य जिसको यह चेतना नहीं है और जिसने निर्बल ही आज्ञाओं को अब तक दिया है और जिसका प्रवृत्ति मानस उस उचित श्रद्धा और विश्वास से पूरित नहीं है जिससे पूरित होना उसे चाहता था, और जिसने प्रायः क्या सर्वदा अपने मालिक को आप सेवक के लिये ऐसा अवकाश देते पाया है कि वह (सेवकप्रवृत्तिमानस) दूसरों की आज्ञाओं और शासनों को ग्रहण करे और इस बात का आदी हो जावे कि किसी भी दूसरे के बलवान वचनमंत्र का ग्रहण और अनुसरण करने लगे, वह मनुष्य प्रायः दूसरों ही की इच्छा के अवलम्ब से चलता है। ऐसी बाहरी प्रेरणायें या तो प्रगट वचन प्रेरणायें होंगी अथवा दूसरों की विचार लहरों द्वारा पहुंचायी प्रेरणायें होंगी।

बहुत से लोग अपने "अहम्" में तनिक भी विश्वास नहीं रखते—वे मानव भेड़ी की भांति हैं और स्वभावत अपने नेता का अनुसरण करते हैं—सच तो यह कि यदि वे नंयन न किये जांय तो असुखी हो जायं। जितनी ही प्रबल आज्ञा होगी उतना ही तत्काल वे उसका अनुसरण करेंगे। जो कथन उनसे जोर देकर कतई कहा जायगा उसी को वे मान लेंगे और अनुसरण करेंगे। ऐसे लोग प्रमाण के आधार पर रहते हैं और नजीर और उदाहरण खोजा करते हैं—उन्हें किसी मनुष्य के अवलम्ब की आवश्यकता रहती है।

संक्षेप में कहा जाय तो वे अहम् के अभ्यास और उसे

जगाने में सुस्त होते हैं और इसी लिये उन्होंने अपने प्रवृत्ति मानस पर शासन नहीं जमाया है किन्तु उसे दूसरों की प्रेरणाओं और उनके प्रभाव को ग्रहण करने के लिये खुला रहने का अवकाश दे दिया है, जो दूसरे प्रायः इस प्रेरणा देने के लिये उनकी अपेक्षा भी कम उपयुक्त हैं परन्तु जो उनकी अपेक्षा अधिक आत्मविश्वास वाले हैं—अपने अहम् की अधिक चेतना रखने वाले हैं।

अब उस साधन पर चलिये जिसके द्वारा प्रवृत्तिमानस अभिभूत होता है। अनेकों रीतियां और अभ्यास के तरीके हैं—दोनों प्रकार के सचेतन और अचेतन—जिनके द्वारा ऐसे फल उत्पन्न किये जाते हैं, परन्तु वे मोटी २ तीन श्रेणियों में रक्खे जा सकते हैं:—(१) प्रत्यक्ष वचन मंत्र; (२) विचार प्रभाव प्रत्यक्ष और परोक्ष; और (३) मूर्छा द्वारा प्रभाव। ये तीनों रूप एक दूसरे से सम्बद्ध और प्रायः सम्मिलित होते हैं परन्तु यहां पृथक् २ करना अच्छा होगा कि उन्हें अच्छी तरह समझ जायं। हम संक्षेप में बारी बारी से वर्णन करते हैं।

पहले प्रत्यक्ष वचनमंत्र पर विचार कीजिये। जैसा हम कह चुके हैं यह अत्यन्त प्रचलित है और इसका अभ्यास सर्वदा हम सब लोग थोड़ा बहुत किया करते हैं और हम सब लोग थोड़ा बहुत इससे अभिभूत होते हैं। हम अपनी हद केवल इसके प्रधान रूपों तक रक्खेंगे। प्रत्यक्ष वचन मंत्र वाणी, आचार और इंगित आकार द्वारा दिये जाते हैं। प्रवृत्ति-मानस प्रमाण मान लेता है और इन शब्दों, आचार, इंगितो आदि को सच स्वीकार कर लेता है और अपनी धारणा की

मात्रा के अनुसार उन्हीं को वर्तने लगता है। यह मात्रा भिन्न २ मनुष्यों में भिन्न २ उस मात्रा के अनुसार होती है जितना उन्होंने अहम् चेतना को विकसाया है जैसा हम ऊपर कह आये हैं। जितनी ही अधिक अहम् चेतना होगी उतनी ही कम यह प्रेरणा धारणा होगी। परन्तु अधिक अहम् चेतना वाला मनुष्य भी यदि थका, व्याकुल चित्त असावधान, अथवा दूसरे के प्रभाव का इच्छुक हो तौभी उसपर अधिक प्रभाव पड़ जाता है।

यह वचन मंत्र जितना विध्यात्मक और प्रबल होगा उतना ही झटपट ग्रहीता प्रवृत्तिमानस द्वारा स्वीकार और अनुसरण किया जायगा। वचन मंत्र मनुष्य की बुद्धि द्वारा नहीं किन्तु उसके प्रवृत्तिमानस द्वारा प्रभाव डालता है—वह तर्क द्वारा नहीं किन्तु कथन, तलबी और आज्ञा द्वारा कार्य करता है। वचन मंत्र बार २ कहे जाने से अधिक बलवान हो जाते हैं और जहां एक वचन मंत्र से मनुष्य न अभिभूत होता हो वहां उसी पथ पर बार २ के वचनों में अधिक शक्ति आ जाती है। कुछ लोग इस वचन मंत्र में ऐसी पटुता प्राप्त कर लेते हैं कि दूसरों को सावधान रहना पड़ता है कि वार्ता लाप में उनके प्रेरित सूक्ष्म वचनों को अचेतनावस्था में कहीं धारण न कर लें। परन्तु जो मनुष्य अहम् चेतना का अनुभव करता है अर्थात् असली आपे और उसके सर्वगत सम्बन्ध को समझता है उसे वचन मंत्र प्रयोक्ता की शक्तियों से डरने की कोई आवश्यकता नहीं हैं क्योंकि उसके वचन मंत्र इसके सुरक्षित प्रवृत्ति मानस को नहीं भेद सकते, और यदि ये वचन उसके

मनकी बाहरी तहों पर लग भी जायं तो वे शीघ्रही पकड़ लिये और फेंक दिये जाते हैं। परन्तु उन लोगों से सावधान रहिये जो आपको तर्क द्वारा नहीं किन्तु कथन, स्वप्रमाण और जाहिरा आचरण तथा कतई पथ से नयन किया चाहते हैं। उनसे भी सावधान रहिये जो आपसे प्रश्न करते ही आप आपकी ओर से उत्तर भी दे लेते हैं। इस प्रकार " आप इस नमूना को पसन्द करते हैं। क्या नहीं पसन्द करते?" अथवा "यह वह चीज़ है जिसे आप चाहते है न ?" वचन और कथन साथ २ चल रहे हैं। आप वचन के साथी को देखकर वचन को पहचान सकते हैं।

दूसरे अब विचार प्रभाव पर विचार कीजिये दोनों प्रत्यक्ष और परोक्ष पर। जैसा हम पहले पाठों में कह आये हैं प्रत्येक विचार के परिणाम स्वरूप उससे विचार लहरें निकलती हैं; इनकी शक्ति, दृढ़ता और पारिमित थोड़ी या बहुत होती है। हम समझा आये हैं कि कैसे ये विचार लहरें प्रेरित की जाती हैं और कैसे ये दूसरों द्वारा ग्रहण की जाती हैं। हम सब लोग सब काल में विचार लहरों को ग्रहण कर रहे हैं; पर थोड़ी ही लहरें हम पर असर डालती हैं क्योंकि सब की सब हमारे विचारों, वृत्तियों, चरित्र रुचि के अनुकूल नहीं हैं, हम अपनी भीतरी चेतना में केवल उन्हीं विचारों को आकर्षित करते हैं जो हमारे विचारों के साथ एक रस हैं परन्तु यदि हम निषेधात्मक Negative चरित्र के हैं और अपने प्रवृत्ति मानस को उचित स्वामी विना ही छोड़ देते हैं, और अत्यन्त धारक बन जाते हैं तो हम इस खतरे में हैं कि

उन्हें स्वीकार कर लें, अपना लें और उन विचार लहरों के अनुसार वर्तने लगें । हम विचार लहरों की क्रियाओं को अन्य पाठों में समझा आये हैं परन्तु इस बात को अभी तक नहीं बतलाया था क्योंकि उसे यहां कहना मंजूर था । अरक्षित प्रवृत्ति मानस केवल सब प्रकार की बहती हुई विचार लहरों से अभिभूत ही नहीं होता किन्तु उस सुदृढ़, विध्यात्मक, इच्छित विचार लहर से और भी अनुरंजित हो जाता है जो विशेष करके उसी के प्रति अन्य प्रयोक्ता द्वारा प्रेरित की जाती है जो मनुष्य दूसरे पर प्रभाव डाला चाहता है, चाहे भले या बुरे के लिये, वह अचेतन रूप से इस प्रकार की विचार लहरों को थोड़े या बहुत बल से प्रेरित करता है । और कुछ वे लोग जो थोड़ा बहुत इस गूढ़ ज्ञान के जानकार हैं और इसे जादू टोना रूप में कलंकित कर दिया है जानबूझ कर और इच्छा पूर्वक ऐसी विचार लहरों को उस मनुष्य के प्रति भेजते हैं जिस पर वे प्रभाव डाला चाहते हैं । और यदि अपने रचित स्वामी द्वारा प्रवृति मानस अरक्षित है तो इन स्वार्थी और दुर्जनों के प्रयत्नों से वह थोड़ा बहुत अवश्य अभिभूत हो जावेगा ।

टोना और जादू काल की कहानियां सब केवल भ्रम और मिथ्या विश्वास नहीं है, किन्तु उन अत्युक्त कथाओं और कहानियों में गूढ़ सत्यता की महत नींव पाई जा सकती है, जिसे उच्च मनोयोगी सरलता से पहचान लेते हैं कि वह प्रारम्भिक गूढ़ शक्ति जादूरूप में कलंकित कर दी गई है । दुनियां के सारे जादू और टोना मिलकर उस मनुष्य पर

कुछ भी असर नहीं पहुँचा सकते जो उच्च कोटि की चेतना रखता है, परन्तु जो भीरु और मिथ्या विश्वासी मन वाला मनुष्य है, जिसमें कुछ भी आत्मविश्वास अथवा आत्माव-लम्ब नहीं है उसका प्रवृत्तिमानस ऐसा होगा कि इन हानि कारक विचार लहरों और विचार रूपों को धारण कर ले। बूढ़े लोगों के प्रलापों, ओझों के अभुवाने, जादूगरों के जादू इत्यादि का अभिप्राय इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि विचार लहरें भेजी जायं, और यह विचार, पूजा, पाठ, रसूम दस्तूरात, मंत्र, मूर्ति आदि की योजना से और भी प्रबल बना दिया जाता है। पन्तु यदि यह अन्य साधना द्वारा भी केन्द्रीभूत किया जाय तौभी ऐसा ही प्रबल हो सकता है। पर चाहे जैसे केन्द्रीभूत या प्रेरित किया जाय पर इसका भी असर न होगा जब तक प्रवृत्ति मानस उसे ग्रहण करने, अपनाने और उसका अनुसरण करने के लिये तैयार नहीं है। जो मनुष्य जानकार है इससे डरने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। सच तो यह कि इन पाठों को केवल पढ़ने ही से बहुत से मनुष्यों के मनों से वह धारणाएँ दूर हो जावेगी जिसके कारण दूसरे मनुष्य इन पर प्रभाव डाल कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकते थे। ध्यान रहे कि यह बात इस पाठ के किसी विशेष बरकत के कारण नहीं किन्तु इस कारण से कि इस पाठ के पढ़ने से शिष्य का मन अपनी अपनी शक्ति पर जग चठेगा और अपना प्रतिपादन करेगा।

स्मरण रहे कि मन वैसे ही विचारों का आकर्षण करता है जो उसी के विचारों के अनुकूल हुआ करते हैं—और प्रवृत्ति

मानस अपने हित के प्रतिकूल तभी अभिभूत होता है जब उसका स्वामी अपनी निर्बलता तथा उसे शासन और रक्षा करने की असमर्थता स्वीकार करता है। आप को अपने प्रवृत्ति मानस की रक्षा आप करनी चाहिये और अपने ही को उसका स्वामी बनाना चाहिये नहीं तो वह स्वामित्व आप से अधिकतर शासन वाले दूसरों द्वारा प्रतिपादित, और अपहृत होने लगेगा। आप के भीतर आवश्यक दृढ़ता और बल वर्तमान है, केवल प्रतिपादन की आवश्यकता है। मांगने से ही वह आप की वस्तु है—आप क्यों नहीं मांगते? आप अहम् चेतना को जगा सके हैं और कथन की शक्ति द्वारा उसे विकसा सकते हैं। आगे चल कर इन बातों पर और भी अधिक कहना है।

अब हम मानसिक प्रभाव के तीसरे रूप का वर्णन करेंगे जिसे आवेश और मूर्छा कहते हैं। हम इस विषय का केवल यहां दिगदर्शन मात्र कर सकते हैं; क्योंकि इसके भिन्न २ रूप और घटनायें यदि फैला दिये जायं तो कई किताबें भर जा सकती हैं। परन्तु हम समझते हैं कि केवल थोड़े ही से शब्दों से इसे हम आप पर स्पष्ट कर सकते हैं क्योंकि आप इस पाठ और पहले के पाठों में हमारे विचारों को समझते आये हैं।

पहली बात स्मरण करने की यह है कि आवेश और मूर्छा केवल उपरि कथित दोनों रीतियों का योग है और उसमें प्राण की अत्यधिक मात्रा जो अत्यक्ष वचन या विचार लहर के साथ प्रेरित की जाती है मिल जाती है। अन्य

शब्दों में, वचन मंत्र और विचार लहरें साधारण दशा की अपेक्षा अत्यधिक प्राण से परिपूरित कर दी जाती है और साधारण वचन या विचार लहर की अपेक्षा इतना अधिक बलवत्तर हो जाते हैं जितना विचार रूप विचार लहर से अधिक बलवत्तर है। संक्षेप में आवेश या मूर्छा वस्तुतः मनुष्यको उस विचार रूप में निमग्न कर देना है जो प्राण की अलम् मात्रा द्वारा संचालित और अत्यन्त क्रियात्मक बना दिये जाते हैं। दूसरी बात यह स्मरण करने के योग्य है किसी मनुष्य पर आवेश और मूर्छा का अभिभाव नहीं होगा जब तक उसका प्रवृत्ति मानस अरक्षित और उचित स्वामी से रहित न होगा और जब तक मनुष्य आविष्ट और मूर्छित होना न चाहेगा। इसका अर्थ यह है कि कोई मनुष्य भी अविष्ट या मूर्छित नहीं हो सकता जब तक वह ऐसा होना न चाहे अथवा जब तक उसका ऐसे हो जाने में विश्वास न हो। इस आवेश में उस उच्च योगी के हाथों से लाभ होते हैं जो इसके नियमों को समझता है परन्तु उन लोगों के हाथ से, जो इसके उचित नियमों से अनभिज्ञ हैं यह अनिष्ट वस्तु है। मूर्ख अभिमानियों के द्वारा मूर्छित होने से सावधान रहिये। अपनी ही शक्ति का प्रतिपादन कीजिये और आप उन सब बातों को अपने आप कर लेंगे जिन्हें दूसरा मनुष्य उसी भूमिका पर कर सकता है।

हमने संक्षेप में मानसिक प्रभाव के सब रूपों का दिग्दर्शन कर दिया है। अब हम "अहम्" चेतना के विषय में कुछ कहकर इस पाठ को समाप्त करेंगे। हम आशा करते हैं

कि आप पूर्ण ध्यान पूर्वक इसको पढ़ेंगे और अभ्यास द्वारा अपनी 'अहम्' चेतना को जगावेंगे।

"अहम्" चेतना के ऊपर और भी उच्च कोटि की चेतना है—आध्यात्मिक चेतना जिसके द्वारा मनुष्य सब शक्तियों के मूल के साथ अपने सम्बन्ध या लगाव का अभिज्ञ होता है। जो लोग इस उच्च आध्यात्मिक चेतना को रखते हैं वे दूसरों की मानसिक चेतना के प्रभाव से बहुत ऊँचे होते हैं क्योंकि वे उस तेज से अच्छादित रहते हैं जो नीचे की भूमिकाओं के कम्पों को दूर हटाया करता है। ऐसे लोगों को अहम् चेतना की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि यह चेतना भी उनकी उच्चतर चेतना के अन्तर्गत है। परन्तु जो विकास की मानसिक भूमिका में हैं। और हम लोगों में से बहुत थोड़े ही लोग इससे आगे बढ़े हैं। उनके लिये बहुत अच्छा होगा कि वे अपनी "अहम्" चेतना को जगावें और विकसावें। यह अहम् चेतना अपने व्यक्तित्व का भाव है। इस बात में आपको इस से सहायता मिलेगी कि आप अपने मनमें धारण करें और अकसर ध्यान करें कि "हम असली सत्ता हैं—अहम्—विश्व-जीवन का एक अंश जो व्यक्ति रूप में इसलिये पृथक् किया गया है कि वह विश्वरूप में अपना भाग आप सम्पादित कर ले और उच्च रूपों में प्रगति करते रहें। हम शरीर से स्वतंत्र और परे हैं और उस औजार की भांति व्यवहार करते हैं—हम अविनाशी और अमर है—हम आग, पानी या किसी से नष्ट नहीं हो सकते, जिसे भौतिक मनुष्य वह वस्तु समझता है जो उसे मार डालेगी—हमारे शरीर का चाहे जो कुछ हो,

जाय पर हम बने रहेंगे। हम जीव हैं और हम शरीर को धारण किये हैं"। अपने को आप स्वतंत्र सत्ता समझिये जो सुविधा के लिये शरीर का व्यवहार कर रहा है। अमरता और सत्यता के भाव को जगाइये तब आप क्रमशः अनुभव करने लगेंगे कि आप यथार्थतः हैं और रहेंगे, तब भय आपसे उतारे हुए लबादे की भांति पृथक् गिर जायगा, क्योंकि भय विचार है जो अरक्षित प्रवृत्तिमानस को निर्बल बनाये रहता है—एक बार भय को दूर कर दीजिये और शेष सब सरल है। हमने इस विषय का 'श्वास विज्ञान' में जीव चेतना के अन्तर्गत वर्णन किया है। सब से अधिक लाभदायक मंत्र जो इन दशाओं में प्रमाणित हुआ है वह "मैं हूं" का विध्यात्मक प्रतिपादन है; यह सत्य को प्रकट करता है और उस मानसिक स्थिति को स्थापिति करता है जिसे प्रवृत्तिमानस धारण करता है और दूसरों के लिये इसे और भी विध्यात्मक बना देता है जिससे यह दूसरों के वचनों द्वारा अभिभूत नहीं हो सकता। "मैं हूं" से द्योतित मानसिक स्थिति आपको ऐसे तेज से आच्छादित कर लेगी कि जो आपको ढाल और रक्षा कवच का काम उस समय तक देती रहेगी जब तक आप और उच्चतर भूमिका में न पहुंच जायंगे। इससे आप में आत्मविश्वास का भाव बना रहेगा और आप में निश्चिति और शक्ति आवेगी।

इस भूमिका से आप क्रमशः उस भूमिका में विकाश करेंगे जो आपको यह निश्चय दिलाती है कि जब आप "मैं" कहते हैं तब आप केवल व्यक्तिगत सत्ता उसकी सब शक्तियों के साथ नहीं कहते किन्तु वह "मैं" अपने पीछे आत्मा की

शक्ति औ दृढ़ता रक्खे हुए है और शक्ति के अक्षय भंडार से संयुक्त है जो शक्ति आवश्यकतानुसार व्यवहार में लाई जा सकती है। ऐसा मनुष्य कभी भय का अनुभव नहीं कर सकता—क्योंकि वह भय से बहुत ऊपर चढ़ गया है। भय निर्बलता का रूपान्तर है और जब तक हम भय को अपनाये हैं और उसे अपना हार्दिक मित्र बनाये हैं तब तक हम दूसरों के प्रभाव के लिये खुले रहेंगे। परन्तु भय को दूर फेंक देने से हम सोपान में कई कदम ऊपर चढ़ जाते हैं और अपने को दृढ़, सहायक, निर्भय, उत्साही विचार की संगति में लाते हैं और पुराने जीवन की सब निर्बलताओं और विपत्तियों को पीछे छोड़ जाते हैं।

जब मनुष्य सीख जाता है कि उसे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता तब भय उसे मूर्खता प्रतीत होने लगता है। और जब मनुष्य अपनी असली प्रकृति और भावी पर जग उठता है तब वह जान जाता है कि कोई वस्तु उसे हानि नहीं पहुंचा सकती और इस लिये भय दूर गिर जाता है।

यह बहुत ही अच्छा कहा गया है कि "भय को छोड़कर और कोई वस्तु डरने योग्य नहीं है"। इस कथन में वह सत्य है जिसे सब मनोयोगी पहचान जायंगे। भय को दूर फेंक देना मनुष्य के हाथ में ऐसा शस्त्र दे देना है जिससे वह अदम्य हो जाता है। आप क्यों इस प्रसाद को नहीं धारण करते जो इस प्रकार आप को सुलभ हो रहा है? आप इसको अपना मंत्र बनाइये कि "मैं हूं" "मैं निर्भय और स्वतंत्र हूं"।

छठा पाठ

आध्यात्मिक विकाश

आध्यात्मिक विकाश का सुन्दर सिद्धान्त योगशास्त्र के मुकुट का मणि—उन लोगों द्वारा भी जो अपने को इसके मित्र कहते हैं, उलटा समझा और समझाया जाता है, यह बड़े खेद की बात है। अज्ञानी मनुष्यों का गरोह इसे एशिया और अफ्रीका के आशिक्षित मनुष्यों की स्थूल भावनाओं से गड़बड़ा देते हैं और यह विश्वास करते हैं कि यह शिक्षा देता है कि मनुष्य के जीव मृत्यु के पश्चात् नीच योनि के शरीर में जन्म लेते हैं। और पुनर्जन्मसम्बन्धी उच्च शिक्षा के आच्छादन में बहुत से लोग यह युक्ति प्रचरित करते हैं कि मनुष्य का जीव पुनर्जन्म के चक्र में बद्ध है और उसे एक शरीर के पश्चात् दूसरे में अवश्य जन्म लेना पड़ेगा—यह तब तक होता रहेगा जब तक एक महानयुग न बीत जायगा और जब तक मानव जाति दूसरे ग्रह पर न चली जायगी ये सब भ्रान्तियां मूल तथ्य के आधार पर स्थापित की गई हैं—ये सच तो हैं पर सत्य के सार अंग नहीं हैं। यह सत्य है कि हिंस्र, स्वार्थी, पाशविक मनुष्य का जीव मृत्यु के पश्चात् अपनी ही कामनाओं की शक्ति से अकृष्टि होकर किसी पाशविक वृत्ति वाली मानव ज़ाति की किसी व्यक्ति में पुनर्जन्म लेगा—वह अपनी श्रेणी या कक्षा के कर्तव्य में विफल हुआ है और नीच कक्षा में

भेजा जाता है। परन्तु वह जीव जो प्रारम्भिक मनुष्यता की भी कक्षा तक एक बार पहुंच गया है, कभी भी नीच जन्तु की भूमिका में नहीं पतित हो सकता। चाहे वह कितना ही पाशविक क्यों न हो पर उसने कुछ ऐसी बात प्राप्त कर ली है जो पशु में नहीं होती, यद्यपि मानव जाति को—जाति रूप से कुछ काल तक प्रतीक्षा करनी होती है कि तब आगे ऊपर बढ़े, तथापि वह व्यक्ति जो तत्काल पुनर्जन्म की आवश्यकता से ऊपर बढ़ गया है विकाश की वर्तमान कक्षा तक पहुंचने वाले मनुष्य की भांति पुनर्जन्म धारण करने के लिये विवश नहीं किया जाता, परन्तु वह तब तक प्रतीक्षा कर सकता है जब तक वर्तमान जाति उस तक नहीं पहुंच जाती कि जिस के वह साथ मिलकर ऊपर को गति करे; बीच की काल या तो भुवर्लोक की उच्चतर भूमिकाओं में बीतता है या अन्य भूलोकों में सचेतन अल्पकालीन निवास में बीतता है जिसके द्वारा सब जीवन के विकाश रूपी महत्कार्य में सहायता पहुंचाई जाती है।

इसलिये अध्यात्म में जगे हुए मनुष्य का अनिच्छित लगातार पुनर्जन्मों के धारण करने में विवश होना तो दूर रहे वह अपनी मर्जी और कामना के विरुद्ध कभी भी जन्म लेने को विवश नहीं होता; और जब अपनी मर्जी और कामना से जन्म भी धारण करता है तो चेतना बनाये रहता है—यह अटूट चेतना इसकी आध्यात्मिक पहुंच के अनुसार होती है। जो लोग इस पाठ को पढ़ रहे हैं उनमें से बहुत से लोग अंशतः अपने भौतिक जीवन की चेतना रखते होंगे, और उन

का इन पाठों की ओर आकर्षित होना इसी तथ्य के पहचान और इसीकी आंशिक चेतना के कारण हुआ है। दूसरे लोग जो इस भौतिक शरीर में हैं उनमें भिन्न श्रेणी की चेतना है; कहीं २ तो पूर्वजीवनों की पूर्ण स्मृति है। प्यारे शिष्य, निश्चय रक्खो कि जब आप आध्यात्मिक जागृति की निश्चित श्रेणी तक पहुंच जायंगे, और कदाचित अभी पहुंच भी गये होंगे, तो अचेतन पुनर्जन्म आप से नीचे छूट गया रहेगा; और जब आप वर्तमान शरीर को छोड़ देंगे—और आध्यात्मिक विश्राम के पश्चात्—आप फिर न पुनर्जन्म लेंगे जब तक आप तैयार न हो जायंगे और आप की मर्जी न होगी। उस अवस्था में आप उन सब बातों की स्मृति लिये रहेंगे जिन्हें आप अपने नये जीवन में ले जाया चाहते हैं। इस प्रकार बलात् और अनिच्छित पुनर्जन्म की चिन्ता और भविष्य के जीवनों में चेतना हानि की कल्पना को आप भले त्याग सकते हैं। आध्यात्मिक प्राप्ति धीरे और परिश्रम से होती है, परन्तु जो प्राप्ति हो जाती है वह कतई ऊपर को हो जाती है और फिर आप उससे फिसल नहीं सकते और न प्राप्त वस्तु के छोटे से अंश को खो सकते हैं।

वे लोग भी, जो अचेतन रूप से पुनर्जन्म धारण करते हैं, जैसा कि जाति के अधिकांश लोगों के साथ हुआ करता है, अपनी कामना और मर्जी के विपरीत पुनर्जन्म नहीं लेते। इसके विपरीत, वे इसी लिये पुनर्जन्म लेते हैं कि वे इसकी कामना करते हैं—क्योंकि उनकी रुचियां और कामनायें ऐसी इच्छायें उत्पन्न करती हैं कि केवल भौतिक पुनर्नव जीवन ही

उनकी पूर्ति कर सकता है, और यद्यपि वे इस बात के पूरे सचेतन नहीं होते तो भी वे अपने को आकर्षण नियम की क्रिया के भीतर डाल देते हैं, और ठीक उन्हीं दशाओं में जन्म लेने की ओर बह जाते हैं, जहां वे अपनी कामनाओं को समाप्त कर सकें और इच्छाओं को पूरी कर सकें—इस प्रकार ये कामनायें और इच्छायें अपनी स्वाभाविक मृत्यु मर जाती हैं, और उच्च कामनाओं तथा इच्छाओं के लिये मार्ग बनाती हैं। जब तक मनुष्य भौतिक वस्तुओं की प्रबल कामनायें करते रहते हैं और ऐसी वस्तुओं से इच्छापूर्वक विराग नहीं करते ठीक तभी तक वे पुनर्जन्म की ओर आकर्षित होंगे कि इन कामनाओं की पूर्ति और निवृत्ति हो। परन्तु जब कोई अनेक जीवनों के अनुभव से ऐसी वस्तुओं को यथातथ्य देखता है और पहचान जाता है कि ऐसी चीजें मेरी असली प्रकृति के अंग नहीं हैं तब वह प्रबल कामना क्षीण होने लगती है और अन्त में मर जाती है और वह मनुष्य आकर्षण नियम की क्रिया से बच जाता है और तब तक उसे पुनर्जन्म की आवश्यकता नहीं होती जब तक किसी उच्च कामना या मनोरथ की जागृति नहीं होती, क्योंकि जाति के विकाश के साथ २ नये युग और नयी जातियाँ आया करती हैं। यह ठीक वैसे ही होता है जैसे कोई मनुष्य उड़कर पृथ्वी के मंडल को पार कर जाय—जहां पृथ्वी का आकर्षण पहुंच न सके—और तब वहां तक प्रतीक्षा करे जब तक पृथ्वी उसके नीचे घूमती हुई न पहुंच जाय—और तब वह अपने नीचे बहुत दूरी पर उस मुकाम को देखे जहां वह आना चाहते हैं, तब उसे केवल

इतना ही करना पड़ेगा कि वह अपने को वहां तक नीचे आने देवे जहां से पृथ्वी की आकर्षणशक्ति उसे अभीष्ट मुकाम पर आकृष्ट कर ले।

बलात् पुनर्जन्म की भावना साधारण मनुष्य के लिये भीषण होती है और भीषण होना उचित है, क्योंकि यह भावना जीवन के महत्त्व नियम की सचाई और उसके न्याय की स्वाभाविक भावना पर चोट पहुंचाती है। हम यहां इसी लिये हैं कि हम यहां रहना चाहते थे—हम उस आकर्षण नियम का अनुसरण कर रहे हैं, जो हमारी उन कामनाओं और इच्छाओं के अनुसार क्रिया कर रहा है जिन्हें हम अन्तिम देह के छोड़ने और जीवन के विश्रामकाल के पश्चात् भी धारण किये रहे। हम उस बड़े नियम के विपरीत जो इस प्रकार क्रिया करता है, कहीं भी और किसी जीवन में भी नहीं जा सकते। यह बात बिलकुल सत्य है कि जीवनों के बीच के समयों में हमें ऐसे अवसर मिलते हैं कि हम आत्मा के उस उच्च तान को और भी अधिक स्पष्टतर रूप से प्राप्त कर सके जो जीवन में भौतिक वस्तुओं के द्वारा क्षोभित हो रहा था, परन्तु इस अधि सहायता पर भी हमारी कामनायें इतनी प्रबल होती हैं कि हम उन कामनाओं के सन्मुख आत्मा की मधुर प्रेरणाओं का तिरस्कार कर देते हैं और हम अपने को कामना की धारा में बह जाने के लिये छोड़ देते हैं और बह कर पुनर्जन्म में ऐसी अवस्था पर पहुंचते हैं जहां हम उन कामनाओं और इच्छाओं के प्रगट करने का अवसर मिले। कभी २ आत्मा की वाणी कुछ २ हम पर प्रभाव डाल देती है और हम ऐसी दशा में

जन्म लेते हैं जो आत्मा की शिक्षा और कामनाओं की प्रेरणा की मध्यवर्तिनी होती है, और इसका परिणाम यह होता है कि यह जीवन परस्पर विरोधिनी कामनाओं और बेचैन इच्छाओं की खींचाखींची से चिथड़े २ हो जाता है, परन्तु यह सब भविष्यत में बेहतर दशाओं की सूचना है।

जब कोई मनुष्य इतना विकस जाय कि आध्यात्मिक मन के प्रभाव के लिये इसी भौतिक जीवन में खुल जाय तो वह निश्चित रह सकता है कि उसका अब पुनर्जन्म उसके उच्च मन के ज्ञान और समर्थन से होगा और पुरानी गलतियाँ अब फिर न होने पावेंगी।

इस तथ्य के साधारण कथन के रूप से हम यह कह सकते हैं कि जो लोग अपने भीतर इस चेतना का अनुभव रखते हैं कि हम सर्वदा से हैं और अनन्तजीवन ही के उद्देश से हम हैं, उन्हें भविष्य के अचेतन पुनर्जन्म के सम्बन्ध में भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं। वे चेतना की उस श्रेणी तक पहुंच गये हैं जहां और जहां से वे भविष्य के जन्मों की सारी क्रिया से अभिज्ञ हुआ करेंगे और यदि वे चाहें तो उसी प्रकार देह परिवर्तन कर सकेंगे जैसे कोई अपना निवास गृह बदलता है अथवा एक देश से दूसरे देश की यात्रा करता है। वे अचेतन पुनर्जन्म की आवश्यकता और उस अन्धी कामना से मुक्त हो गये हैं जो गत काल में उनकी भाग्य थी और जो मानव जाति के अधिकांश लोगों की अब भी भाग्य है।

अब इतनी भूमिका के पश्चात् देखना चाहिये कि योगियों द्वारा सिखलाये हुए आध्यात्मिक विकाश का अर्थ क्या है।

योगशास्त्र बतलाता है कि मनुष्य सर्वदा जीता रहा है और सर्वदा जीता रहेगा। वह बात जिसे हम मृत्यु कहते हैं, केवल अगले दिन जागने के लिये सो जाना है। मृत्यु केवल चेतना का अल्पकाल के लिये खो जाना है। जीवन लगातार है। इसका उद्देश विकाश, वृद्धि और खिलना है। हम लोग अनन्तता में उतना ही अब भी हैं जितना कभी भी हो सकते हैं। जीव असली मनुष्य है, न कि यह शरीर की केवल सामग्री मात्र है, जैसा कि बहुत से लोग इसे समझते प्रतीत होते हैं। यह जीव शरीर से पृथक वैसे ही भली भांति रह सकता है जैसे शरीर में। यह बात अलबत्ता है कि कुछ अनुभव और ज्ञान केवल इसी भौतिक शरीर ही के कारण हो सकता है। इसी लिये इस प्रकार का जीवन होता है। हम लोगों को शरीर इसीलिये है कि हमें इसकी आवश्यकता है, जब हम एक निश्चित स्थान से आगे उन्नति करेंगे तो हमें इस प्रकार के शरीर की आवश्यकता न रहेगी जिसकी अब है और हम इससे मुक्त हो जायंगे। और भी अधिक स्थूलतर भूमिकाओं में जीव ने इस शरीर से भी अधिक भद्दे शरीरों को धारण किया था। उच्च भूमिकाओं में जीव सूक्ष्मतर शरीरों को धारण करेगा। जब हम एक पार्थिव जीवन के अनुभवों को जी चुकते हैं तब हम शरीर को छोड़ कर विश्राम की दशा में जाते हैं और उस विश्राम के पश्चात् फिर शरीर में जन्मते हैं। ये शरीर और दशायें हमारी आवश्यकताओं और कामनाओं के अनुकूल हुआ करती हैं। असली जीवन जीवनों की, पुनर्जन्मों की, एक वृहत् श्रृंखला है। हमारी वर्तमान जीवन संख्या पहले

पहले जीवनों में से एक है। हमारा वर्तमान आपा हमारे पूर्वजीवनों में प्राप्त अनुभवों का परिणाम है। संक्षेप में योग शास्त्र इन्हीं बातों की शिक्षा देता है।

योगशास्त्र बतलाता है कि जीव जमानों से जीता चला आता है, अनेकों रूपों में से होकर नीचे से ऊपर को प्रगति करता चला आता है—सर्वदा प्रगति कर रहा है, सर्वदा विकास कर रहा है। यह असंख्य जमानों तक अनेकों रूपों और रीतियों में विकसता और खिलता रहेगा, पर सर्वदा ऊंचे और ऊंचे जायगा। विश्वमहत् और विस्तृत है। इसके निवासियों के लिये असंख्य संसार और लोक हैं। जब हम उच्च लोकों और भूमिकाओं में घूमने के योग्य हो जायंगे तो एक क्षण भी इस पृथ्वी से न बंधे रहेंगे। योगी लोग बताते हैं कि यद्यपि मानवजाति के अधिकांश लोग आध्यात्मिक विकाश की अचेतन श्रेणी में हैं तथापि सत्य में अनेक जागृ-तियाँ हो रही हैं, और मनुष्य की असली प्रकृति और भविष्य की आध्यात्मिक चेतना विकस रही है। ये अध्यात्म में जागृत मनुष्य अब फिर लगातार अचेतन पुनर्जन्म की शृंखला में न जावेंगे; इनका भविष्य विकास चेतन भूमिका में होगा; ये लोग लगातार प्रगति और विकास को पूरा उपभोग करेंगे न कि जीवन के शतरंज में केवल गोटियाँ रह कर चलाये जावेंगे। योगी लोग बतलाते हैं कि जीवन के बहुत से रूप हैं जो मनुष्य से अधिक नीच हैं—इतने नीचतम हैं कि हम उन की भावना भी नहीं कर सकते। हम लोगों की विकास की वर्तमान भूमिका से ऊपर भी जीवन की श्रेणियां हैं कि जिनकी

भावना को हमारा मन ग्रहण भी नहीं कर सकता। वे जीव जो उस मार्ग को पार कर गये हैं जिस पर हम चल रहे हैं, हमारे बड़े भाई हमें लगातार उत्साह और सहायता दे रहे हैं, अक्सर हमारी ओर अपना सहायक हाथ बढ़ा रहे हैं, यद्यपि हम उसे नहीं पहचानते। हम लोगों की भूमिका की परे की भूमिकाओं में ऐसी चेतनायें हैं जो एक बार वैसे ही मनुष्य थी जैसे अब हम हैं परन्तु अब सोपान में इतना ऊपर चढ़ गई हैं कि हमारी तुलना में वे देवता, फरिश्ते और देवराज हैं। किसी समय हम भी उनकी भांति हो जांयगे।

योगशास्त्र बतलाता है कि आप जो इन पाठों को पढ़ रहे हैं बहुत बहुत जीवन जी चुके हैं। आप जीवन के नीच रूपों में सोपान में क्रमशः ऊपर चढ़ते हुए जी चुके हैं। जब आप जीवन के मानवरूप में आये तो आप कन्दरावासी, पहाड़ी. जंगली, वहशी, लड़ाका, बहादुर, मध्यकाल के विद्वान्, कभी यूरप, कभी भारतवर्ष, कभी फारस, कभी पूरब और कभी पच्छिम में जीवन व्यतीत करते रहे हैं। सब जमानों में, सब आब हवा में, सब मनुष्यों में, सब जातियों में आप जी चुके हैं, अपनी सत्ता रख चुके हैं अपना कार्य कर चुके हैं और मर चुके हैं। प्रत्येक जीवन में आपने अनुभवों को प्राप्त किया है, सबक पढ़ा है, अपनी गलतियों से लाभ उठाया है, वृद्धि किया है, विकास किया है। जब आप शरीर छोड़ गये और विश्राम के काल में प्रवेश कियीं तब गत जीवन की 'आप की स्मृति विलीन हो गई पर उस जीवन में जिन अनुभवों को आपने प्राप्त किया था उनके परिणाम को अपने स्थान पर छोड़ गई। जैसे आप २० वर्ष

गुज़रे जमाने के किसी दिन, किसी हफ्ते का अधिक नहीं स्मरण करते तौभी उस दिन और उस हफ्ते के अनुभव अमिट रूप से आपके मन पर अंकित हैं और तब से लेकर अबतक आपके प्रत्येक दिन के कार्य पर प्रभाव डालते आये हैं, वैसे ही आप अपने पूर्व जीवनों के विवरणों को भूल गये हैं पर तौ भी वे अपने चिन्ह आपके जीव पर छोड़ गये हैं और अब आपको प्रतिदिन का जीवन इस प्रकार का उन्हीं गत अनुभवों के कारण है।

प्रत्येक जीवन के पश्चात् अनुभवों का एक प्रकार का उबाल होता है, और उसका परिणाम, अनुभव को असली परिणाम, नये आपे के उस उन्नत आपे के, बनाने में अंग हो जाता है जो थोड़े काल के बाद नया जन्म धारण करने के लिये नया शरीर ढूंढ़ेगा। परन्तु हममें बहुतों को गतजीवन की स्मृति पूर्णतया खो नहीं जाती, ज्यों२ हम प्रगति करते हैं त्यों२ प्रत्येक बार हम अधिक २ चेतना लाते हैं, और आज हम में से बहुत लोग किसी गत जन्म की स्मृति की इत्तफाकिया झाकी पा जाते हैं। हम पहली ही वार किसी दृश्य को देखते हैं और वह दृश्य आश्चर्यमय परिचित प्रतीत होता है, पर तौ भी हम उसे पहले कभी नहीं देखे रहते। एक प्रकार की स्मृति होती है जो खड़बड़ मचा देती है। हम किसी चित्र को देखते हैं, जो प्राचीन कीर्ति है और हमें भीतर ही जान पड़ता है कि जैसे कभी इस चित्र को पहले देखे हों, परन्तु पहले इस चित्र के पास भी हम नहीं गये होते। हम किसी पुरानी किताब को पढ़ते हैं और वह पुराने मित्र सी

जान पड़ती है पर हम इस वर्तमान जीवन में उसे कभी देखना भी नहीं स्मरण करते। हम किसी दार्शनिक युक्ति को सुनते हैं और तत्काल उसे ग्रहण कर लेते हैं मानों यह बचपन में जानी हुई और जी लगाई हुई है। हममें से कुछ लोग किसी बात को ऐसा सीखते हैं मानों सीखी बात को दुहरा रहे हैं और सचमुच ऐसा होता है। बच्चे बचपन ही से बड़े सांगितिक, कलाकुशल, लेखक, कारीगर के लक्षण दिखलाने लगते हैं, यद्यपि उनके माता पिता को ऐसा कोई भी गुण न था। ऐसे परिवारों से शेक्सपियर उत्पन्न हो जाते हैं और संसार को चकित कर देते हैं जिनकी व्यक्तियों में ऐसे कोई गुण न थे। ऐसे ही जीवनपथ से अब्राहम लिंकन आजाते हैं कि जब उन के ऊपर दायित्व भार रक्खा जाता है तो बड़ी से बड़ी प्रतिभा दिखाते हैं। ये और अन्य ऐसी बातें केवल पूर्वजन्म की युक्ति द्वारा सिद्ध हो सकती हैं। हम पहली ही बार मनुष्यों से मिलते हैं और हम पर यह झलक उठती है कि हम इन्हें पहले भी जानते थे, ये हमसे पहले सम्बन्ध रखते थे पर कब, आह ! कब ?

बाज २ अध्ययन बहुत आसानी से हमें आजाते हैं और अन्यों को बड़ी कठिनता से सीखना पड़ता है। कोई २ व्यवसाय हमें अत्यन्त अपने से जान पड़ते हैं, और चाहे जितनी बाधायें मार्ग में पड़ें हम उसे अपने अनुकूल व्यवसाय में कार्य करते ही जाते हैं। हमें अचिन्तित बाधा का सामना पड़ जाता है, या ऐसी दशायें उपस्थित हो जाती हैं जिनमें असाधारण

शक्ति या गुण की आवश्यकता होती है, पर यह देखो ! हमें उस कार्य के करने की योग्यता प्रतीत होती है । कुछ अच्छे से अच्छे लेखकको और वक्ताओं ने अपने गुण को इत्तफाक से जाना । ये सब बातें आध्यात्मिक विकास की युक्ति से सिद्ध होती हैं । यदि पैत्रिकता ही सब कुछ है तो यह बात कैसे होती है कि एक ही मा बाप के अनेक लड़के होते हैं पर वे दूसरे से और माता पिता से इतने भिन्न हो जाते हैं। यह सब पैत्रिकता ही है ? तो कृपा कर के बतलाइये शेक्स-पियर ने किस से प्राप्त किया और किस तक पहुँचा ?

इस पुनर्जन्म की युक्ति को प्रमाणित करने के लिये तर्क के ढेर के ढेर लगा दिये जा सकते हैं, पर इससे लाभ क्या होगा ? मनुष्य बुद्धि द्वारा तो इसे ग्रहण कर सकता है और स्वीकार कर सकता है कि युक्ति की यह बुद्धिसम्मत क्रिया है, परन्तु कब किसी बुद्धिगत भावना ने जीव को शान्ति दिया है ? कब उस सत्य भावना को किया है जिसे लेकर वह बिना कँपे हुए मृत्यु की खन्दक में जा सके—और चेहरे पर मुसकुराहट बनी रहे ? नहीं ! ऐसी निश्चिति केवल उस प्रकाश से होती है जिसे आध्यात्मिक मन नीचे की मानसिक शक्तियों पर डालता है । बुद्धि बातों को तरतीब दे सकती है और उनसे कार्यपथ निकाल सकती है परन्तु जीव को सन्तोष तो केवल आत्मा ही की शिक्षाओं से होता है; और जब तक ये शिक्षायें नहीं मिलतीं तब तक वह उस अनिश्चिति और बेचैनी को भुगतता ही रहता है जो उस समय उठ खड़ी होती है । जब बुद्धि खिलती है और उससे प्रश्न "क्यों" को

पूछती है जिस का उत्तर स्वयम् बुद्धि ही नहीं दे सकती।

इस प्रश्न का कि "क्या पुनर्जन्म सच बात है" एकमात्र उत्तर यह है कि "क्या आप का जीव इसे ऐसा समझता है ?" जब तक जीव स्वयम् न समझे कि यह युक्ति सच है क्योंकि यह भीतरी निश्चिति से मिल जाती है तब तक इस बात पर बहस करने से कोई लाभ नहीं है। जीव इस बात को स्वयम् पहचान ले—अपने प्रश्न का आप उत्तर दे ले। यह सत्य है कि इस युक्ति का कथन (हम इसे युक्ति कहते हैं, यद्यपि योगी लोग इसे तथ्य समझते हैं) किसी २ के मन में स्मृतियों को जगा देगा—ऐसा साहस देगा कि उन अर्धनिर्मित विचारों और प्रश्नों को बुद्धिसम्मत समझे जो वर्षों से उनके मनों में उड़ रहा था—परन्तु इतना ही वह कर सकता है। जब तक जीव पुनर्जन्म के तथ्य को ग्रहण और अनुभव न करे तब तक यह अचेतन भूमिका पर क्रिया करता हुआ घूमता रहेगा, और पुनर्जन्म उसी की कामनाओं और इच्छाओं के कारण उसे मिलता रहेगा और वह चेतना को खोता रहेगा। परन्तु जब जीव इस तथ्य का अनुभव करने लगेगा तब वह ऐसा न रहेगा—वह अपने साथ गतकाल की स्मृतियों को धारण किये रहेगा—कभी धुंधली और कभी स्पष्ट—और पुनर्जन्म में सचेतन इच्छा का व्यवहार करने लगेगा। जैसे पौधा अचेतन भूमिका में क्रिया करता है, और जैसे पशु अर्द्धचेतन भूमिका में क्रिया करता है और मनुष्य जैसे क्रमशः उन्नत और उन्नत चेतना की भूमिकाओं में क्रिया करता है, वैसे ही मनुष्य अचेतन पुनर्जन्म से क्रमशः विकाश करता

हुआ अर्द्धचेतन भूमिका में होता हुआ आगे बढ़ता जाता है और अन्त में वह सचेतन भूमिका में अपने भौतिक जीवन और विश्राम काल तथा नये जन्म में रहता है। आज भी हम लोगों में ऐसे मनुष्य हैं (यह सत्य है कि बहुत कम परन्तु बहुतों की कल्पना से बहुत अधिक) जो गत जीवनों से पूर्णतया अभिज्ञ हैं और जो बचपन ही से ऐसे रहे हैं, केवल उनका बचपन स्वप्न की सी दशा में बीता जब तक उनका भौतिक मस्तिष्क इतना पुष्ट न हो गया कि जिससे जीव स्पष्ट सोच सके। सच तो यह कि बहुत से बच्चे गतकाल की धुंधली चेतना रखते हुए प्रतीत होते हैं, परन्तु अपने बड़ों की आलोचना के भय से तब तक ये अपनी स्मृतियों के इन अंशों को दबाते रहते हैं जब तक फिर वे इन्हें जगाने में असमर्थ नहीं हो जाते।

जो लोग पुनर्जन्म के तथ्य तक जागृत नहीं हुए हैं उनपर यह निश्चिति बलात् नहीं डाली जा सकती, और जो लोग इसके तथ्य का अनुभव करते हैं उन्हें बहस की आवश्यकता नहीं। इसलिये हमने इस युक्ति के इस संक्षेप कथन में इस बातपर तर्क करने का प्रयत्न नहीं किया है। जो लोग इस पाठ को पढ़ रहे हैं वे उस मनोरंजन के कारण पढ़ रहे हैं जो उनके गत जीवन में जगा था, और वे वस्तुतः अनुभव करते हैं कि इसमें अवश्य कुछ तथ्य है, यद्यपि वे अबतक उस अवस्था तक नहीं पहुंचे हैं कि इस कथन को पूरा २ अपना सकें।

उनमें से बहुत से लोग जिनके मन पर इस कथन की सचाई आन्तरिक भावों द्वारा अथवा आंशिक स्मृतियों द्वारा

अंकित हो गई है, इसको पूरा २ स्वीकार करने में अनिच्छा दिखलाते हैं। ये अपनी मर्जी और इच्छा के विपरीत जन्मने की भावना से डरते हैं। परन्तु जैसा हम उनसे कह चुके हैं यह वे बुनियाद भय है, और यदि वे पुनर्जन्म के तथ्य को वस्तुतः अनुभव करने लगे हैं तो उनकी अचेतन भूमिका के अचेतन विकाश का समय वीत रहा है।

वहुत से लोग कहते हैं कि हमें फिर जीने की इच्छा नहीं है परन्तु वास्तव में उनका यह भी अभिप्राय है कि वे ठीक उसी जीवन को नहीं जिया चाहते जिसे वे जी आये हैं। सच है वे उसी अनुभव को फिर प्राप्त करना नहीं चाह सकते, परंतु जीवन में यदि एक भी वस्तु उनको अभीष्ट है, कोई भी पदवी भरना उन्हें अभीष्ट है, उनको सुखी बनाने के लिये किसी कामना का तृप्त होना शेष है, तब वे निश्चय इस त्रुटि की पूर्ति के लिये फिर जीना चाहते हैं। वे यहां इसी लिये हैं कि यहां रहना वे चाहते थे, या इच्छायें रखते थे, जो तृप्त होने के लिये जोर मार रही थीं, और वे फिर उन दशाओं में आयेंगे जिनकी आवश्यकता उनकी कामनाओं की तुष्टि के लिये है वा उनकी आध्यात्मिक वृद्धि के अर्थ आवश्यक अनुभव कराने के लिये है।

आध्यात्मिक विकास के इस विषय के शिष्य के लिये मनोरंजक बातों का एक बृहत् क्षेत्र खुल जाता है। इतिहास और मानव प्रगति पर प्रकाश पड़ जाता है और अन्वेषण का मनोहर क्षेत्र उपस्थित हो जाता है। हम इस विषय की इस शाखा में प्रवेश करने की चाह को अवश्य रोकेंगे क्योंकि

इससे हम उन आकर्षक पथों पर जा रहेंगे, जिन्हें इन प्रारम्भिक पाठों में ग्रहण करना निषेध है, क्योंकि स्थान का अभाव है। हम इन बातों के सम्बन्ध में कुछ थोड़ा सा कहने के लिये स्थान पा सकते हैं।

यह पृथ्वी हमारे सूर्यमंडल के ग्रहों की शृंखला की एक कड़ी है। ये सब ग्रह एक दूसरे से इस आध्यात्मिक विकास के नियम में आन्तरिक संयोग रखते हैं। जीवन की बड़ी लहरें इस शृंखला पर प्रवाहित होती हैं और एक ग्रह से दूसरे ग्रह को जाति के पश्चात् जाति को बहाये लिये जाती हैं। प्रत्येक जाति प्रत्येक ग्रह पर एक निश्चित काल तक रहती है और तब विकस कर विकास सोपान के अन्य उच्च ग्रह पर जाती है, क्योंकि वहां इसके विकास योग्य अनुकूल दशायें मिलती हैं। परन्तु एक ग्रह से दूसरे को प्रगति वृत्ताकार नहीं है—यह मीनार भीतर की उस जीने के समान है जो घूमता भी जाता है और ऊपर को भी चढ़ा जाता है।

किसी ऐसे जीव को अपने सूर्यमंडल की ग्रह-शृंखला में से किसी ग्रह पर बसने की कल्पना कीजिये जो आध्यात्मिक विकास में बहुत कम उन्नति किये हुए है···जो विकास के सोपान पर निचले स्थान पर है। उस कक्षा में मिलने वाले अनुभवों को इस जीव ने अनेक जन्मों द्वारा प्राप्त कर लिया है और तब शृंखला उच्चतर ग्रह को अपनी जाति के अन्य जीवों के साथ बहाया जाता है और वहां जन्म लेता है। इस नयी जन्मभूमि में अपनी पिछली जन्मभूमि की अपेक्षा उच्चतर भूमिका को धारण करता है···उसकी सारी जाति वहाँ एक

नयी जाति की आबादी बना रही है, जिसमें कोई जीव अगुआ है और शेष अनुसरण कर रहे हैं। पर तौ भी यह उच्च भूमिका (पिछले ग्रह की भूमिका की तुलना में तो उच्च पर) प्रगति के सोपान में इस ग्रह पर पहले से बसने वाली जातियों की भूमिका की अपेक्षा बहुत नीची हो सकती है। कुछ जातियाँ विकास सोपान में जो इस भूमि पर नीचतम हैं इस ग्रह पर आने के पहले वाले ग्रह पर उच्चतम के समान रही होंगी और तौ भी इस परिवर्तन से उन्होंने बड़ा लाभ उठाया है···नीचतर ग्रह का उच्चतम जीव कदाचित उच्चतर ग्रह के नीचतम जीव की अपेक्षा कम ही विकसित होगा। बहुतसी जातियाँ जो पहले इस भूमि पर बसती थीं, जिनके चिन्हों को हम कभी कभी पा जाते हैं, अब विकास की उच्चतर श्रेणी को चली गई हैं। इतिहास दिखलाता है कि पृथ्वी के विकास में जाति पर जाति सम्मुख आई···क्रिया की रंगभूमि में अपना कर्तव्य किया···और तब चली गई। कहाँ? इसके आगे के गुप्त वर्णन को केवल योग शास्त्र ही दिखा सकता है। हमारी जाति ने पत्थर काल की श्रेणी से···और उससे भी पीछे की श्रेणी से···बढ़ना प्रारम्भ किया है···और बढ़ती रहेगी ··और तब चली जायगी और अन्य नई जाति के लिये, जिसने शायद अगुओं को भेजना प्रारम्भ कर दिया हो, जगह छोड़ जावेगी।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि प्रत्येक जाति जिसका इतिहास में वर्णन है, इस पृथ्वी से चली गई है। इसके विपरीत योगी लोग जानते हैं कि कुछ क्या, इतिहास की अधिकांश जातियोंने आज की भी जातियों में जन्म धारण किया

हैं। इस गड़बड़ को इस प्रकार समझिये कि प्रत्येक जाति के अन्तर्गत अनेक अन्तर्जातियाँ होती हैं जो वास्तव में उसी प्रधान जाति की हैं। उदाहरण के लिये योगी लोग जानते हैं कि प्राचीन ईजिप्शियन्स, रोमन्स, ग्रीक्स, एटलान्टीयन्स, प्राचीन पर्शियन्स आदि अब भी इसी भूमि पर हैं···अर्थात् जिन जीवों ने पहले इन जातियों में जन्म लिये थे अब आधुनिक जातियों म जन्म लिये हैं। परन्तु और भी जातियाँ हैं··· इतिहास के पूर्व की जातियाँ···जो पृथ्वी के आकर्षण के बिलकुल परे चली गई हैं और उच्चतर ग्रहों की उच्चतर कार्य-भूमिकाओं में चली गई हैं। हमारी पृथ्वी की अपेक्षा और भी नीचतर ग्रह प्रगति के सोपान में हैं; और अनेकों उच्चतर हैं जिनकी ओर हम लोग चल रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि सूर्यमण्डल भी दूसरे हैं···सूर्यों की शृंखलायें हैं···दूसरे अन्तर्विश्व हैं (यदि ऐसा शब्द व्यवहार में लाने के लिये क्षमा मिले) और यह सब बात प्रत्येक जीव के आगे है चाहे वह जीव कितना ही तुच्छ और कितना ही दीन क्यों न हो।

हमारी जाति इस समय विकास के प्रधान काल में हो कर जा रही है। यह आध्यात्मिक विकास की अचेतन श्रेणी से सचेतन श्रेणी में जा रही है। बहुतों ने पहले ही अपनी सचेतन श्रेणी को प्राप्त कर लिया है और उससे भी अधिक अब उसके लिये जाग रहे हैं। अन्त में सारी जाति उसको प्राप्त कर लेगी और तब यहाँ से चल देगी। आध्यात्मिक चेतना में यह क्रमशः जागृति ही विचार संसार में इतनी बेचैनी उत्पन्न कर रही है, इस प्रकार पुराने आदर्शों और

रूपों से तुरत भागना, यह सचाई की भूख, नये तथ्यों के पीछे यह इधर उधर दौड़ना! जाति के इतिहास में यह नाजुक काल है; और बहुतों का विश्वास है कि इस काल में जाति दो विभागों में विभक्त हो जायगी, जिनमें से एक तो आध्यात्मिक चेतना धारण करेगा और उन सुस्त भाइयों के आगे२ चलेगा जो क्रमशः गति करेंगे। परन्तु जाति फिर संयुक्त हो जायगी तब पृथ्वी से विदा होगी क्योंकि यह आध्यात्मिक कारण कार्य के नियम से सम्बद्ध है। हम सब लोग परस्पर एक दूसरे की प्रगति में बँधे हुए हैं...इसी लिये नहीं कि हम सब भाई हैं परन्तु इस लिये कि हमारे जीव को तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जब तक सारी जाति न विकस जाय। इसमें सन्देह नहीं कि जाति तीव्र वेग से विकसित जीव को केवल इसी लिये पुनर्जन्म न लेना पड़ेगा कि उसके सुस्त भाई को जन्म लेना पड़ रहा है। इस के विपरीत उच्चविकसित जीव प्रतीक्षा का दीर्घ काल भुवर्लोक की उच्चतर भूमिकाओं में बिताता है जब तक उसका सुस्त भाई बार २ के जन्म से अपना विकास सम्पादित कर रहा है। उच्चतर भूमिकाओं का निवास विकसित जीव को अधिक सुख और लाभ देने वाला होता है। बहुत से ऐसे प्रतीक्षा करने वाले जीव अपने अर्जित विश्राम का बलिदान कर के इस भूमि पर अपने सुस्त भाइयों को सहायता देने और ऊपर उठाने आते हैं। यह आना या तो अरूपी सहायक अथवा इच्छित जन्म लेने वाले के रूप से होता है। यह जन्म लेना उनके अपने खास विकास के लिये आवश्यक नहीं है। वे इच्छापूर्वक इस मांस के

को केवल अपने निर्बलतर भाइयों को उद्देश तक पहुँचाने के लिये धारण करते हैं। जाति के बड़े २ आचार्य अधिकांश ऐसे ही जीवों में से हुए हैं जिन्होंने इच्छापूर्वक अपने साथियों के प्रेम से स्वर्ग का त्याग कर दिया। यह कितना बड़ा बलिप्रदान है, इसकी कल्पना करना बहुत कठिन है। आध्यात्मिक विकास की उच्च भूमिका को छोड़ कर इस नीच अविकासित सभ्यता में आना! यह कैसा है? जैसे इमर्सन अफ्रीका के बुशमैनों में पादरी का काम करें।

यह सारा विकास किस उद्देश की ओर प्रवृत्त है? इस सब का अभिप्राय क्या है? जीवन के नीच रूपों से लेकर उच्चतम तक सब पथ पर हैं, यह पथ किस स्थान अथवा किस दशा को जा रहा है? आइये इसके उत्तर देने का यत्न करें। कल्पना कीजिये कि करोड़ों वृत्त एक दूसरे के भीतर हैं। प्रत्येक वृत्त जीवन की एक श्रेणी है। बाहरी वृत्त नीचतम और अत्यन्त भौतिक श्रेणी के जीवन से भरे हैं... केन्द्र के निकटतर के वृत्त उच्चतर और उच्चतर रूपों से भरे हैं...आगे चल कर मनुष्य देवता हो जाते हैं। आगे, आगे, आगे और आगे जीवन का रूप और भी उच्चतर और उच्चतर होता जाता है। अन्त में मानव मन उस भावना को ग्रहण नहीं कर सकता। और केन्द्र में क्या है? सारे आध्यात्मिक शरीर का मस्तिष्क...परमात्मा...परमेश्वर।

और हम सब उसी केन्द्र की ओर यात्रा कर रहे हैं।

देशसुधार ग्रन्थमाला की अन्य पुस्तकें:—

श्वासविज्ञान अर्थात् प्राणायाम।

यह पुस्तक स्वामी रामाचारक के साइंस आफ ब्रेथ का हिन्दी रूपांतर है—प्राणायाम की सरल क्रियायें इसमें भले प्रकार वर्णन की गई हैं—योगी तथा गृहस्थ सभी इससे लाभ उठा सकते हैं—मूल्य केवल ॥) है—

हठयोग अर्थात् शारीरिक कल्याण।

इस पुस्तक में ऐसी सरल रीति से शरीर के भीतर की कारीगरी, खान-पान, पाचन, निद्राशक्ति, शिथिलता आदि का वर्णन किया गया है जिसे हर एक मनुष्य उनको समझ कर उस प्रकार के लाभ उठा सकता है जिसको योगी लोग बहुत दिन गुरु की सेवा कर के सीख पाते हैं। योगाभ्यास के लिये यह पुस्तक मनुष्य को बिलकुल तैय्यार कर देती है। इसमें बहुत सरल रीति की योगक्रिया लिखी गई है। पृष्ठ २०५ मूल्य १॥)

राजयोग अर्थात् मानसिक विकास।

इस पुस्तक में मन जो शरीर का राजा है उसको अपने वस में करने के अभ्यास तथा उनकी विधि ऐसे सरल प्रकार से लिखी गई है जो सब के समझ में आ सके। इच्छा, राग, द्वेष आदि मन ही से उत्पन्न होते हैं अतः मन को सिद्ध करना ही योग का मुख्य सिद्धांत है वह इस पुस्तक में भली भांति दिखलाया गया है। पृष्ठ २०२ मूल्य १॥)

योगशास्त्रांतर्गत धर्म।

इस पुस्तक में धर्म के उस रूप का विवरण किया गया है जिसमें मतभेद नहीं है और न हो सकता है। यह धर्म का रूप

योगी की आँखों से जो सब पथों को एक ही सा उनके स्थिति के अनुसार देखता है देख पड़ता है। इसमें धर्म की परिभाषा, संशय का संशोधन, उचित अनुचित का विचार, ईश्वरादेश आदि तत्व भली प्रकार दिखाये गये हैं। मूल्य ॥)

योगत्रयी

अर्थात् कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग।

जैसा कि "ब्राह्मण सर्वस्व" ने अपनी समालोचना में लिखा है "इस पुस्तक में ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का स्पष्ट वर्णन किया गया है। इन योगों का स्वरूप जैसा श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने निर्धारित किया है उसी के आधार पर इस पुस्तक की रचना हुई है"। इस पुस्तक के अध्ययन और मनन से अपने और ईश्वर के विषय का पूर्ण ज्ञान उत्पन्न होता है। पृष्ठ १०८ मूल्य ॥)

सावित्री।

राजपुताने की प्रसिद्ध रानी का चरित्र पद्य में है। दाम ≡)
सुनीत गीतावली दाम ।≈) राग रत्नावली दाम ॥)

कृषिसिद्धांतमाला, दाम ≈)

कृषि संबंधी सिद्धांत इसमें पद्य रूप से दिये हैं और उनमें संकेत की व्याख्या सरल भाषा में उसके नीचे दी है।

सातवाँ पुष्प "संसार रहस्य" छप रहा है बहुत शीघ्र तय्यार हो जायगा।

मिलने का पता—

मिश्रा बुकडिपो,

चौक, बनारस सिटी।

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबर काशी २३-८-२२।